श्री अरविन्द कर्मधारा

हर नई उषा एक नयी प्रगति की संभावना लेकर आती है।

श्रीमाँ

21 फरवरी 2018 वर्ष 48 अंक 1

श्री अरविन्द रैलिक्स 60 वाँ वर्षगाँठ के कार्यक्रम में मित्ती देसाई द्वारा नृत्य नाटिका प्रस्तुति।

प्रकृति के मध्य थोड़ा मनोरंजन, थोड़ा आराम।

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम-
दिल्ली शाखा का मुखपत्र

21 फरवरी 2018-वर्ष-48-अंक-1

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर फकीर`

सम्पादक

त्रियुगी नारायण

सहसम्पादन

रूपा गुप्ता

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, सुश्री रंगम्मा

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा (निःशुल्क उपलब्ध)

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा
श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26524810, 26567863
आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

निःशुल्क पत्रिका के लिये कृपया सब्सक्राइब करें-
sakarmdhara@gmail.com

श्रीमाँ और उनका सन्देश

“जन्म और प्रारंभिक शिक्षा से मैं फ्रेन्च हूँ।

अपनी इच्छा और रूचि से मैं भारतीय हूँ। मेरे जीवन का एकमात्र ध्येय है श्री अरविंद की महान् शिक्षाओं को मूर्त रूप देना।

सन् 1914 से ही, जब मैं पहली बार भारत आयी, मैंने अनुभव किया कि भारत ही मेरा असली देश है, यह मेरी आत्मा और अन्तःकरण की भूमि है।

भारत की सच्ची नियति है जगत् का गुरू बनना।

हे भारत, आध्यात्मिक ज्ञान और प्रकाश के देश! जगत्

में अपने सच्चे कर्तव्य के प्रति सचेतन होओ और एकता

तथा सामंजस्य का मार्ग दिखलाओ।”

एक दिन आता है जब अन्दर और बाहर की सभी बाधाएं टूट जाती हैं और हम उस पक्षी की तरह अनुभव करते हैं जो एक निर्विरोध ऊँची उड़ान के लिये पंख खोलता है।

श्रीमाँ

इस अंक में...

श्रीमाँ और उनका सन्देश

1. **ॐ आनन्दमयी चैतन्यमयि सत्यमयि परमे** 4
(प्रार्थना और ध्यान)

2. **सम्पादकीय** 5

3. **परिचयात्मक** 6

4. **श्री अरविन्द के 125वें जन्मदिन पर श्री माँ द्वारा दी गयी श्रद्धांजलि** 8

5. **हंस – पाखिनी** 11
-करुणामयी

6. **सच्चा एकान्त** 13
श्रीमाताजी

7. **सादा जीवन** 14

8. **दिल्ली आश्रम की स्थापना-12 फरवरी 1956** 15
सुरेन्द्रनाथ जौहर

9. **12 फरवरी 2018** 19

10. **थियेटर आफ रैलिवेन्स** 20
रूपा गुप्ता

11. **स्थिरता, शांति, समता** 22
श्री अरविन्द

12. **समर्पण** 25
श्रीमाँ

13. **प्रभु - कृपा** 26
करुणामयी

14. **सदा सुख कैम्प** 27

15. **सच्ची दया** 28
(श्रीमाँ)

16. **हिमालय का फ़क़ीर** 30
डॉ. के. एन. वर्मा

17. **विचार और सूत्र** 33
(श्रीमाताजी)

18. **मर्ज़ी** 35
(सुरेन्द्रनाथ ज़ौहर फ़क़ीर)

19. **धीरज** 36

20. **श्री अरविंद रैलिक्स स्थापना की 60वीं वर्षगांठ** 37
रूपा गुप्ता

21. **प्रेरणायें** 40

ॐ आनन्दमयी चैतन्यमयि सत्यमयि परमे

(प्रार्थना और ध्यान)

हे प्रेम की विजयिनी शक्ति, तू इस विश्व की एकाधिपति स्वामी है, तू इसकी स्रष्टा और रक्षक है। तूने इसे अन्ध-व्यवस्था में से उभरने की अनुमति दी है और अब तू ही इसे अपने शाश्वत लक्ष्य की ओर ले जा रही है।

ऐसी कोई तुच्छ वस्तु नहीं जिसमें मैं तुझे चमकते हुये ना देखती होऊँ, तेरी इच्छा के प्रति ऐसी कोई आभासी विरोधी सत्ता नहीं है जिसमें मैं तुझे निवास करते, कार्य करते और प्रसारित होते हुये ना देखती होऊँ।

हे मेरे मधुर स्वामी, इस प्रेम के सार तत्व, मैं तेरा हृदय हूँ और तेरे प्रेम की बौछारें मेरी समस्त सत्ता में प्रवाहित होती हैं ताकि सभी वस्तुओं को तेरे प्रेम की उस चेतना की ओर जगा दें जो सबको अनुप्राणित करती है।

वे सब जो तुझे नहीं पहचानते, वे सब जो तुझे नहीं जानते, वे सब जो तेरे मधुर और दिव्य विधान से मुँह मोड़ने की कोशिश करते हैं, उन सबको मैं अपने प्रेम की भुजाओं में लेती हूँ, मैं उन्हें प्रेम के हृदय में झुलाती हूँ औरउन्हें तेरी दिव्य अग्निशिखाओं के अर्पित करती हूँ ताकि तेरा चमत्कारपूर्ण तेज उनमें प्रवेश करे और वे तेरे परमानन्द में परिवर्तित हो जायें।

हे प्रेम, हे समुज्ज्वल प्रेम, तू सबमें प्रवेश करता है और सबको रूपान्तरित करता है।

श्रीमाताजी

सम्पादकीय

श्रीमाँ का इस धरती पर अवतरण ईश्वर की महती कृपा की अभिव्यक्ति है। श्रीमाँ के जन्म दिवस 21 फरवरी के लिये 'कर्मधारा' का ये अंक सभी पाठकों को बधाई देता है।

श्री अरविन्द और श्रीमाँ एक ही व्यक्तित्व के दो अलग.अलग पहलू हैं। एक का जन्म पूर्व में हुआ दूसरे का पश्चिम में! मानव एकता के आदर्शों के लिये ऐसा होना आवश्यक था। पूर्व और पश्चिम के मिलन तथा आध्यात्मिकता और भौतिकता के बीच जो सामंजस्य स्वामी विवेकानन्द और बहिन निवेदिता ने किया, श्री अरविन्द और माँ ने उसे साकारता प्रदान की। पर सचमुच में कितने लोग जानते हैं उन्हें? दुनिया की महानतम घटनाओं में कम से कम शोर होता है। महानतम व्यक्तियों की पहचान मरणोपरान्त होती है। दिग्विजयिनी उपलब्धियाँ मूक प्रयोगशालाओं में जन्मती हैं। श्रीमाँ के प्रति लोगों की अनभिज्ञता को दूर करने के इस प्रयास में हम '**परिचयात्मक**' कड़ी इस अंक से प्रकाशित कर रहे हैं।

कर्मधारा का यह अंक 12 फरवरी दिल्ली आश्रम का स्थापना दिवस भी अपने संजोये हुए है। श्री अरविंद दिल्ली आश्रम की स्थापना में चाचाजी को कैसी कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उन्होंने उन्हें कैसे पार किया। श्रीमाँ का 'श्री अरविन्द दिल्ली आश्रम' के विषय में क्या स्वप्न था यह भी आप इस अंक जान सकेगें। श्री माँ के सच्ची दया, सच्चा एकांत और समर्पण के विषय में स्पष्ट विचार निश्चय ही साधक की साधना में और सहायक होंगे।

प्रिय करुणामयी दीदी की पुण्यतिथि 26 जनवरी पर हम उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि देते हैं। इस अंक में प्रस्तुत दीदी का मानस पंख 'हंस पाखिनि' उनके हृदय की पुकार और मन की तर्कशीलता के विरोधाभास को अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त करता है।

सुधि पाठकों की प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

रूपा गुप्ता

धरती का भविष्य चेतना के परिवर्तन पर निर्भर करता है। भविष्य के लिये एकमात्र आशा यही है कि मनुष्य की चेतना बदले और यह बदलाव अवश्यम्भावी है।

लेकिन यह निर्णय मनुष्यों पर ही छोड़ दिया गया है कि वे इस परिवर्तन में स्वेच्छया सहभागी हों अथवा दुर्धर्ष परिस्थितियों का दबाव उन्हें इसके लिये विवश कर दे।

श्रीमाता जी

परिचयात्मक

श्रीमाँ का जन्म पैरिस में 21 फरवरी सन् 1878 को एक संभ्रांत परिवार में हुआ। उनके पिता मोरिस अल्फासा एक बहुत बड़े बैंकर और माता मातिल्दा एक सुशिक्षित महिला थीं। अल्फासा दम्पति के दो ही सन्तानें थीं, पुत्र का नाम था मतिओ जो बाद में अल्जीरिया व कांगो के गवर्नर हुये। बेटी का नाम था मीरा जो विश्व में श्रीमाँ या माता जी के नाम से एक आध्यात्मिक विभूति के रूप में विख्यात हुई। मीरा जैसा भारतीय नाम इसे निरा संयोग कहें या किसी आत्मा का चुनाव? यह परिवार कुछ वर्ष पूर्व मिस्त्र से आकर फ्रांस में बसा था।

श्रीमाँ (मीरा) जन्मजात योगी थीं। 4 वर्ष की आयु से ही इन्हें स्वाभाविक रूप से ध्यान लगता था। ध्यान के समय एक प्रज्वलित ज्योति इनके शिरोमंडल में प्रवेश करती और अद्वितीय शांति का अनुभव कराती। परिवार के लोग इनकी गंभीर मुखाकृति और ध्यानमग्नता को देखकर चिन्ता की स्थिति समझते थे लेकिन श्रीमाँ को धीरे-धीरे इससे स्वानुभूति होने लगी। 12 वर्ष की आयु तक तो बिना किसी दीक्षा के वे घण्टों ध्यान में डूबने लगीं।

पेरिस के समीप फाउण्टेन ब्लू नाम के जंगल में वे अकेले ही निकल जातीं और ऊँचे पेड़ों की जड़ में बैठकर जब एकांत में ध्यानस्थ हो जातीं तो प्रकृति के साथ उनका गहरा तादात्म्य हो जाता और गिलहरियाँ तथा पक्षी इनके शरीर के ऊपर दौड़ते-फुदकते रहते। वे पेड़-पौधों के भीतर प्राचीन को प्रविष्ट कर उनके अन्तर को पढ़ने में सक्षम थीं। बाद में साधना की उन्नति के साथ यह तादाम्य पशु पक्षियों और मनुष्यों के साथ भी होने लगा, दूरस्थ वस्तुओं और अचेतन चीज़ों के साथ भी। श्रीमाँ की शिक्षा-दीक्षा थोड़ी देर से प्रारम्भ हुई और जब हुई तो उसकी दिशाएँ चहुँमुखी हुईं- सामान्य पाठ्यक्रम के साथ-साथ नृत्य, संगीत, चित्रकला, साहित्य आदि में इनकी गहरी रूचि ने शीघ्र ही एक सर्वांगीण व्यक्तित्व की रचना प्रारंभ कर दी। साधना की दुर्लभ स्थितियाँ, जो उनकी समूची शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु थीं, शायद उन्हें अज्ञात सूत्रों व संस्कारों से प्राप्त होती रहीं। 13 वर्ष की आयु में उनका सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीर से प्रत्येक रात को बाहर निकल जाया करता था और तब उन्हें ऐसी अनुभूति होती कि उनका विशाल सुनहला परिधान सारे पेरिस शहर के ऊपर छाया है जिसके नीचे दुनिया के हजारों दुखी और संतप्त लोग आकर आश्रय ग्रहण कर रहे हैं और उसे छू कर शांति और स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। यह एक ही अनुभूति उन्हें लगातार छः माह तक होती रही। मानवता के संताप और वेदना की चीखों को वे तब अपने आँचल में समेट लेने के लिये अपनी आजानुबाहुओं को मीलों की दूरी तक पसार दिया करतीं।

इस आयु में ही स्वप्नावस्था में श्रीमाँ की उच्च कोटि की साधना कितनों ही गुरुओं द्वारा पूरी कराई गई। अनेकों गुरुओं में एक गुरु ऐसे थे जिनका सान्निध्य उन्हें आरंभ से अन्त तक मिला और इसके कारण वे समझ गईं कि वे कहीं ना कहीं पृथ्वी में हैं और उनके साथ मिलकर उन्हें मानवता के लिये विशेष कार्य करना है। इनकी आराधना वे कृष्ण के रूप में करने लगीं और भविष्य में उनके साक्षात्कार की अभीप्सा लिये दैवी मुहूर्त की प्रतीक्षा करने लगीं।

1904 में एक भारतीय ऋषि से श्रीमाँ की भेंट फ्रान्स में ही हुई। उन्होंने गीता का एक फ्रेन्च अनुवाद माँ को दिया जो बहुत अच्छा अनुवाद तो नहीं था पर

एक माह के भीतर श्रीमाँ उसी के माध्यम से भगवान कृष्ण के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने में सफल हो गईं। फिर तो संस्कृत भाषा से उन्हें अगाध प्रेम हो गया और भारतीय संस्कृति के अध्ययन की भूख इतनी तीव्र हो उठी कि ना केवल उन्होंने उपनिषेदों और सूत्रों का अध्ययन कर डाला बल्कि ईषोपनिषद् व नारद भक्तिसूत्र आदि का संस्कृत से फ्रेन्च में अनुवाद भी कर दिया। स्वामी विवेकानन्द के राजयोग की पुस्तक उन्हें हाथ लगी और उसे पढ़ कर जब उनकी अनुभूतियों का उसमें पूर्ण सामंजस्य प्राप्त हो गया तो श्रीमाँ ने सन्तोष की साँस लेते हुये कहा- 'चलो, दुनिया में एक व्यक्ति तो मिला जिसने मुझे समझा।'

1905 में उन्होंने पेरिस में जिज्ञासुओं की एक गोष्ठी 'बुद्ध विचार' का संगठन किया जिसमें योरुप के दूर-दूर के विद्वान, मनीषी और नैतिकता प्रेमी भाग लेने आने लगे।

इन गोष्ठियों में माता जी द्वारा व्यक्त किये गये पुराने विचारों को पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है क्योंकि इन विचारों में श्री अरविन्द के दिव्य जीवन में अभिव्यक्त विचारों की ही सुन्दर झाँकी मिलती है।

अपनी दैनन्दिनी में श्री माँ ने लिखा, 'कोई चिन्ता की बात नहीं यदि हजारों लोग घने अज्ञान में फँसे हैं, कल हमने जिन्हें देखा वे धरती पर विद्यमान हैं जो यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि एक दिन आयेगा जब अंधकार ज्योति में बदल जायेगा और धरती पर हे प्रभु! तेरा राज्य स्थापित होगा।' अपने समर्पण में श्रीमाँ ने जो लिखा उसे 'राधा प्रार्थना' के नाम से जाना जाता है। इस प्रार्थना का एक-एक शब्द आज भी एक अभीप्सु की हृदय-तंत्री को झनझना देता है-

"हे प्रभु! मेरे सब विचार तेरे हैं। मेरी समस्त भावनाएं, मेरे हृदय के सारे संवेदन तेरे हैं। मेरे जीवन के सारे संचरण, मेरे शरीर का एक-एक कोष, मेरे रक्त की एक-एक बूँद तेरी है। मैं सब प्रकार से और समग्र रूप से तेरी हूँ। मेरे लिये तू जीवन चुने या मरण, हर्ष दे या शोक, सुख दे या दुख, तेरी ओर से मुझे जो भी मिलेगा, आँचल में बाँध लूंगी।"

श्री अरविन्द के 125वें जन्मदिन पर श्री माँ द्वारा दी गयी श्रद्धांजलि

कभी कोइ समय ऐसा होता है जब एक अकेला व्यक्ति पूरे युग और इसके आन्दोलन को स्वंय में समाहित कर लेता है और उसका होना ही कार्य की पूर्णता का विश्वास बन जाता है। 'व्यक्ति के बिना सभी आन्दोलन खोये हुये अवसर हैं और बिना आन्दोलन के व्यक्ति अक्रियाशील शक्ति है।' 15 अगस्त 1872 को श्री अरविन्द का जन्म ऐसे ही युग और व्यक्ति के मिलन का प्रतीक है और ऐसे क्षण ही 'ईश्वरीय क्षण' कहलाये जाते हैं।

अभिनव भविष्य के पुरोधा श्री अरविन्द
धरा की रज रज में हो तुम्हारा नव अवतरण
सारा पथ आलोकित हो तुम्हारी भव्य गरिमा से।
सारा जग उद्भाषित हो तुम्हारी दिव्य महिमा से।
अभिनव प्रभात के प्रणेता श्रीअरविन्द।
दिशा के मग मग में हो तुम्हारा नव अवतरण
जल थल परिप्रलावित हो तुम्हारी तरल करूणा से
वन वन अभिमण्डित हो तुम्हारी रूचिर स्फुर्णा से।
अभिनव वसंत के विधाता श्री अरविन्द।
वीणा के स्वर स्वर में हो तुम्हारा नव संक्रमण

सात साल की उम्र में ही श्री अरविन्द को उनके दो बड़े भाइयों के साथ शिक्षा के लिये इग्लैण्ड भेज दिया गया। उन्होंने वहाँ पर 14 साल तक पश्चिम की सर्वोत्तम शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने ग्रीक और लैटिन में भी आसानी से निपुर्णता प्राप्त की और उच्च श्रेणी में ICS की परीक्षा प्राप्त की। फिर भी भारत ही उनकी प्राथमिकता थी, उनकी नियत कर्म भूमि थी जहाँ उन्हें भविष्य के नये बीज का आरोपण करना था । 1983 में उन्होंनें इग्लैंड छोड़ दिया। जैसे ही उन्होंने भारत की एप्लोबंदर की भूमि पर पहला कदम रखा उनके अंतर में एक अथाह शांति उतर गई जिसने उन्हें घेर लिया और अगले कई महीनों तक के लिये उनमें समाहित रही। भारत माता ने अपने संतान की वापसी का स्वागत किया।

जय भारती जय भारती जय भारती!
स्वर्ग ने भी जिस तपोवन की उतारी आरती॥
जय भारती.............
ज्ञान-रवि-किरणें जहाँ फूटीं प्रथम आलोक-क्षण में,
साम्य-सेवा-साधना सरसिज खिला प्रत्येक मन में,
मृत्यु को भी है अमर गीता-गिरा ललकारती।
जय भारती...............

ध्यान में तन्मय जहाँ योगस्थ शिव-सा है हिमालय,
कर रही झंकार पारावार-वीणा दिव्य अव्यय,
कोटि जन्मों के अघों को जाह्वी है तारती॥
जय भारती जय भारती जय भारती!

श्री अरविन्द ने बड़ौदा में 13 साल कार्य किया और इस अवधि में भारत के सर्वोत्तम ज्ञान और इसकी आत्मा को आत्मसात किया। उनकी चेतना में पश्चिम के विचार और भारत की आत्मा का एक महत्व एकत्वीकरण प्रगट हुआ।

उनकी कर्मभूमि तैयार थी। श्री अरविन्द ने भारत को घेरे हुये गहन अन्धकार पर दृष्टि डाली, उन्हें उसमें छिपी हुई सुबह की नई किरण दिखाई दी। उन्होंने स्पष्ट देखा कि भारत का सूर्य उदय होकर भारत, समस्त एशिया और सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करेगा। 1905 में बंगाल के अलगाव के विरोध में उठे आंदोलन ने श्री

अरविन्द को बड़ौदा छोड़ने का अवसर दिया और वे पूरी तरह से राजनीतिक आंदोलन से जुड़ गये। देश की चेतना, असंतोष की अग्नि में झुलस रही थी लेकिन राष्ट्र के पास एक ऐसी प्रतिभा का अभाव था जो उसकी भावनाओं को समझकर अभिव्यक्ति दे सकता और उसको आगे बढ़ा सकता।

और तब भारत की भूमि पर एक महाव्यक्तित्व का अवतरण हुआ जो चरित्र में सर्वोत्तम थे और बौद्धिकता में मानवीय सीमाओं की सर्वोच्च अभिव्यक्ति थे। कांग्रेस राजनीति के रूप को बदलने और लोगों में व्याप्त अप्रगट ओजपूर्ण उत्साह को बाहर प्रगट करने के लिये उनमें एक ज्वलन्त तीव्र लगन थी।

अन्धकार में कम्पित धरणी, झलक उठी कौन आया....।
चन्द्र की शीतलता आयी, सूरज ओजस लाया।
ध्यान धनुक से सेतु बाँधा, लोक अलोक मिलाया।
तेज देखकर भाग्य की रानी, सहसा शीश नवाया॥
युक्त हुई आ धन्य घटाएँ, गरजीं बल दिखलाया।
बुझते दीप की शिखा देखकर, योगेश्वर मुस्कराया॥
लोकनाथ फिर छोड़ सिंहासन, पृथ्वी साज सजाया।
जय श्री अरविन्द जगत् विधाता, अब जग तारण आया॥
कौन आया.................................... ॥

उनकी ज्वलन्त लेखनी और भाषण ने प्रत्येक भारतीय के हृदय को जगा दिया। श्री अरविन्द राष्ट्रीय पार्टी के नेता और ब्रिटिश राज्य के लिये सबसे अधिक भयाक्रान्त व्यक्ति बन गये जिनको वो किसी भी हाल में पकड़ना चाहते थी। उन्होंने कहा, मैं तलवार और बन्दूक से नहीं लेकिन ज्ञान और ब्रह्मतेज की शक्ति से लड़ूँगा। मैं इसी के साथ पैदा हुआ हूँ, ये मेरी अस्थियों की मज्जा में समाया हुआ है। ईश्वर ने मुझे पृथ्वी पर यही कार्य करने के लिये भेजा है। उन्होंने अपनी मातृभूमि की पूजा भवानी भारती और दुर्गा के रूप में की। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उसे विदेशी शासन के बन्धन से मुक्त करने के लिये समर्पित कर दिया।

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयज-शीतलां
शस्य-श्यामलां मातरम्
शुभ्र-ज्योत्सना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर-भाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्॥
कोटि-कोटि-कण्ठ-कल-कल-निनाद-कराले
असंख्य कोटि-भुजै धृत-खरकरवाले
अबला कैनो मां ऐतो बोले?
बहुबल-धारिणीं नमामि तारिणीं
रिपुदल-वारिणीं मातरम्॥
वन्दे मातरम्...।

भारत, मेरा भारत! जहाँ से पहली मानवीय दृष्टि स्वर्गिक प्रकाश की ओर उठी, सम्पूर्ण एशिया का तीर्थ स्थल, शक्ति का महास्त्रोत, जगत् माता, मानव को दर्शनशास्त्र और पवित्र विद्या, ज्ञान, ईश्वरीय प्रेम, कार्य, कला और धर्म का खुला दर दिखाने वाला!

भारत, मेरा भारत आज तुम्हें कौन दयनीय दृष्टि से देख सकता है? बुद्धि, पूजा, कार्य, आत्मा की अंतरतम किरण तक का परिचालक।

तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म
त्वं हि प्राण शरीरे॥
बाहुते तुमि मां शक्ति
हृदये तुमि मां भक्ति

तोमारइ प्रतिमा गौड़ी मन्दिर-मन्दिरे ॥
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी
कमला कमल-दल-विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां
नमामि कमलां अमलां अतुलां
सुजलां सुफलां मातरम्
वन्दे मातरम्।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां
धरणीं भरणीं मातरम्॥

मेरे भारत उठो, मेरे भारत उठो! कहाँ है तुम्हारी प्राणिक शक्ति- तुम्हारी निर्थक भावुक भक्ति असमर्थ बना देती है। किसको परवाह है तुम्हारी भक्ति और मुक्ति की। मैं सौ नरकों में भी प्रसन्नता पूर्वक जाने के लिये तैयार हूँ यदि मैं अपने देशवासियों को जो तमस में डूबे हुये हैं उनके पैरों पर खड़ा कर सकूँ और उनको कर्म योग के उत्साह से प्रेरित सकूँ। उठो, मेरे भारत उठो!

आविर्भूता भारत जननी, युग शंकास्थिर मस्तमिता

प्रतिदिशमुदिता नवतपनाशा, जलधर सेना श्रृंखलिता

अपराजेया महिदां माता, दुर्गा प्रतिमा अधम बाधा

स्फुरित हृदये वंदन गाते, दैवम् जित अविताभा प्राणे

गायति विजया ज्योतिर धात्री, माँ भयि विगता तामस रात्रि

मिथ्या मार्गम माया विगरम, सत्यं तीर्थम् शिव मिलने

मिथ्या जड़ता ननु परवशता, धरणी धन्यं अम्बर भुवने

गुरूवर ऋषिनाम् मंत्रा गीता, वरण्य अनंत परिणीता॥ आविर्भूता

फरवरी 1910 में श्री अरविन्द कलकत्ता छोड़ कर पड़ौस में चन्दन नगर के फ्रैंच अधिकृत क्षेत्र में चले गये। अंततः एक अंतर आदेश के मार्गदर्शन में श्री अरविन्द ने चन्दन नगर छोड़ दिया और पांडिचेरी की तरफ चल दिये। 4 अप्रैल 1910 को वे पांडिचेरी पहुँचे। राजनैतिक कार्यों से गहराई तक जुड़े रहने के बावजूद उनका योगा अभ्यास लगातार जारी रहा । अलीपुर जेल में एक साल के एकांतवास और ध्यान ने श्री अरविन्द के महान रूपांतरण के लिये कार्य किया। सब वस्तु में और प्राणी मात्र में वासुदेव दर्शन का उनका अनुभव उनकी आध्यात्मिक साधना में आत्मा को आन्दोलित करने वाला एक महत्वपूर्ण कदम था।

नमो भगवते वासुदेवाय,
नमो भगवते वासुदेवाय
नमो भगवते वासुदेवाय,
नमो भगवते वासुदेवाय

इस शुभ समय में एक बार फिर हम अपने आप को नवीन कार्यों के प्रति समर्पित करें। एक नवीनीकृत विश्वास और शक्ति के साथ हम उस नवीन अभिव्यक्ति के लिये अपने आप को तैयार करें जो पृथ्वी पर व्यक्त होने के लिये तैयार है। अपनी सम्पूर्ण निष्ठा के साथ हम माँ से प्रार्थना करें "ईश्वर हम पृथ्वी पर तुम्हारे रूपांतरण के कार्य को पूरा करने के लिये हैं। यह हमारी एकमात्र इच्छा है और एकमात्र व्यस्तता है। अनुदत्त करें कि यही हमारा एकमात्र कार्य हो और हमारे सभी क्रियाकलाप इसी एक लक्ष्य की ओर प्रेरित हों।"

ॐ नमो भगवते श्री अरविन्दाये

(हिन्दी अनुवादः रूपा गुप्ता)

हंस – पाखिनी

-करुणामयी

प्रार्थने !

सन्देश वाहिके ! !

शान्ति दायिके !!!

आ! मेरे हृदय की गहराइयों से बाहर की सभी बाधा–व्यवधानों को बेधकर विद्युत सी एक झलक मेरी मुँदी आँखों में देती दूर दिग-दिगंत के पार मेरे परमदेव के हृदय में जाकर बिंध जा ! तू जो बाण सी मेरे अंतर में कसक रही है– मेरे प्राणों की सारी कशिश से जीवन की प्रत्यंचा पर खिंचकर अब तू मुझसे विदा हो जा ! दूर चली जा!! वहीं जा जहाँ तेरा ठिकाना है!!! तू तो है ही पराई अमानत तुझे मैंअंतर में कब तक संजो सकूँगी ......

जा तू अपने घर जा!!

ओ प्रार्थने !

मेरे आत्मा की संदेश वाहिनी हंसे !

मेरे हृदय में बिंधे तीर को खींचकर –

धकाकर पारकर देने से मानो मुक्ति देनेवाली !

ओ परम शान्ति दायिके!!

अविश्वास का खेल खेलते–खेलते जब पाया कि हम अपने परम देव को ही तर्क के जंगल में न जाने किस कुएँ में फेंक आये हैं तो एक साँझ यह अंतर बिलबिला कर रो उठा! कहाँ खो गये हो ओ मेरे विराट्! कहाँ से पाऊँ– किससे माँगूँ ....

अपनी बुद्धि के सामने ऐसे आँसू बहाने में संकोच होने लगा पर हृदय अपनी शिशु–माँग पर मचल – मचलकर पाँव पटक–पटककर रोने लग गया– रट ही लग गई, 'कहाँ हो तुम? कहाँ से पाऊँ? मैं कैसे जिऊँ? मैं क्यों जियूँ? क्यों बनाया यह सब ऐसा? क्यों बनाई हमारे अन्दर ऐसी माँग जिसका उत्तर नहीं है – ऐसी प्यास जिसको एक बूँद विश्वास की नसीब नहीं है? क्यों? क्यों?...

क्यों हो रहा है यह सारा नाटक हमारे चारों ओर? बड़ी जिम्मेदारी से सब झूठा प्रपंञ्च खेला जा रहा है! क्यों हम खेलें ऐसा झूठा खेल? क्यों बनें भागी इस माया–झूठी माया के नाटक के? - पर किससे फ़रियाद करें? किसे पुकारें? कौन करेगा हमारी पीड़ा का हरण? भगवान को तो, उस देविध देव को तो – परमा माँ को तो हम ही बुद्धि व तर्क की कुइयाँ में डाल आये हैं।'

रो –रोकर – कुइयाँ ताल तलैयाँ भी भर दें तो भी वह कैसे वापस पायें । असंभव !! और है कौन जो हमें इस क्षण की विडम्बना से – पल – पल की प्रतारणा के गर्त्त से निकाले? क्या यह संसार ही धोखा है या मैं ही यहाँ की सबसे बड़ी मायाविनी हूँ कि सब माया पता लगने पर भी चीखकर कहती नहीं कि "यह सब धोखा है । मैं इसकी भागीदार नहीं बनूँगी।" तो मैं क्या हूँ?...

पर अन्तर में जानती हूँ कि कहने से ही क्या होगा – ना कहने में – कहने में अन्तर भी क्या है? ऐसा सोचता ही कौन है – किसको फुर्सत है चक्र के चक्कर लगाने से जो कभी समाप्त नहीं हो सकते – एक के बाद दूसरा कुछ और इसी तरह सब कुछ – कई शुरु के चक्र में ही घूम रहे हैं और कई दशकों से घूमते आ रहे हैं– थककर गिर जाते है और Merry Go Round के चक्र–झूले से बाहर हो जाते हैं पर थककर चूर होकर – समाप्ति क्षण तक भी यह नहीं देख पाते

हैं कि क्या इसी चक्र से हम असंख्यों बार नहीं निकले हैं? क्या पाया? किस आशा – किस उम्मीद को लेकर फिर अपनी उसी कुर्सी के लिए ताबड़तोड़ यत्न करते हैं कि वह छिन न जाये घोड़ा, हाथी, मोटर, साइकिल कोई भी सवारी मिल जाये–उससे जी–जान से चिपके रहते हैं और मैं उसमें – झूठे चक्र में विश्वास ना करते हुए भी वही खेल खेलती जा रही हूँ बिल्कुल बेमन। इसे कौन जाने । वर्ष पर वर्ष बीतते जा रहे हैं जीवन के एक मुक़ाम पर आकर सब आत्मीय, परिजन, सखा–सहचर इकट्ठे होकर मुबारक दे देते हैं और 'एक वर्ष और' का बोझ लादकर चले जाते हैं ! वाह! ....जब पाने लायक कुछ लगता ही नहीं इस मायानगरी में – जहाँ प्रतिस्पर्धा और धक्का – मुक्का भरे जीवन में प्रगति को साधा जा सके तो वह वर्ष का भार केवल व्यर्थता और शून्यता के बोझ को ही और बढ़ाकर लाद जाता है जिससे अन्तर की कसक (जो कि अस्तित्व का बोधन देनेवाली थी) पिसकर कराहने लगती है।

इसी सबके बीच जब पागल प्राणों की पुकार अपनी बुद्धि के गुंबदों तक ही टकरा–टकराकर फिर प्राणों को ही घोंटने लगती तो लगता कि अन्तर के इतने तीव्र रव से चीखों, आर्त नादों, घुटती सिसकियों से गुंबद की दीवारें भी फट जायेंगी – असंख्य विस्फोट एक साथ होने लगे ....चीखों – कराहों से अन्तर विक्षिप्त हो उठा ...... जिनका कोई अन्त नहीं– कोई उद्धेश्य ही नहीं !!! और तब जब सबको शिकायत होने लगी कि 'इतनी गुमसुम है ...... इसे तो बोलना ही नहीं आता' ....। अब मैं क्या कहूँ? किससे बोलूँ? किस स्तर पर क्या बोलूँ? जब सभी मूल- आधार विहीन है जिसमें कुछ सत्य ही नहीं केवल माया के ही पुतले हैं !

तभी चमत्कारों का चमत्कार घटित हो गया। परम देव ने छद्म – रुप में जीवन में प्रवेश किया। सहसा लगा कि उनके आगमन मात्र ही से जीवन प्राण बल उठे – खिल उठे– सहज हो उठे – जितनी देर उनका साया रहता चाहे कितनी भी देर , अन्तर आनन्द की आभा से दीप्त हो हुलसता रहता, तब मैं अपने बुद्धि के गुंबदों से पुकार पुकारकर पूछती कि क्या है यह आनन्द – क्या है यह सुकून – राहत – सहजता? यदि 'वह' नहीं है तो इसका आधार क्या है? और बुद्धि के गुम्बजों से टकराकर मेरे प्रश्न – प्रश्न ही बनकर आ पड़ते मुझ पर!

सच तब लगता कि कौन मुझे क्या दे सकता है? कौन मेरा क्या ले सकता है? इसका कहाँ से स्रोत है – कहाँ इस कृपा – धार का अन्त है .... यह भी क्या कभी सूखनेवाली स्रोतस्विनी है? और देखा कि बहुत काल में जाना – पहिचाना कि सुरों की सीढ़ी पर दबे – दुबके पाँवों से चलकर – मेरे हृदयासन पर स्वयं ही आ विराजे थे । मुझे व आतप जग को शांति–प्रेम–शीतलता का अजस्र भंडार–अक्षय निधि लुटाने के लिए । 'संगीत के देवता' के रुप में – हाँ स्वयं भगवान परमदेव ही मेरे हृदय–प्राण–मन–आत्मा, दिग–दिगंत सभी में दिव्य प्रभा गंध से व्याप्त हो रहे थे....आभासित–प्रतिभासित क्षण- क्षण हो रहे थे और मेरी चेतना के कण-कण को निरंतर दीप्त–प्रकाशित उल्लसित कर रहे थे!

सच्चा एकान्त

श्रीमाताजी

यह निश्चित है कि आत्मा की स्वतन्त्रता पाने के लिये अकेले खाना, अकेले सोना, अकेले घूमना और जंगल में बिलकुल अकेले रहना बिलकुल ही पर्याप्त नहीं है।

देखा गया है कि जो लोग वन में अकेले रहते हैं उनमें से अधिकांश लोग अपने अगल-बगल के पशुओं और पेड़-पौधों के मित्र बन जाते हैं। सच पूछो तो एकमात्र एकान्त में रहने से ही तुम्हें आन्तरिक ध्यान में और परम सत्य के संस्पर्श में निवास करने की शक्ति नहीं मिल जाती। सम्भवतः परिस्थितियों के वश जब तुम्हें कुछ भी करने को नहीं रहता, तब ऐसा करना अधिक आसान हो जाता है, किन्तु मुझे इस पर विश्वास नहीं। तुम सदा ही कोई-ना-कोई धन्धा ढूंढ सकते हो और जीवन के मेरे जो अनुभव रहे हैं उनसे मुझे ऐसा लगता है कि यदि तुम कठिनाइयों के बीच अपनी प्रकृति पर अधिकार कर सको, भगवान् की कृपा ने तुम्हें जैसा परिपार्श्व प्रदान किया है उसके बीच रहते हुये यदि तुम आन्तरिक रूप में शाश्वत उपस्थिति के साथ एकाकी रहने का प्रयत्न करो तो तुम्हें जो सिद्धि मिलेगी वह अनन्तगुनी अधिक सच्ची, अधिक गहरी और अधिक स्थायी होगी।

कठिनाइयों को जीतने के लिये उनसे दूर भाग जाना कोई समाधान नहीं है। यह आकर्षक बहुत है, आध्यात्मिक जीवन की खोज करने वालों में कोई चीज़ ऐसी होती है जो कहती है : ओह! किसी वृक्ष के नीचे, बिलकुल अकेले बैठ जाना, ध्यानमग्न बने रहना, बोलने और कार्य करने के किसी प्रलोभन में अब ना पड़ना, यह कितना सुन्दर होगा। इसका कारण यह होता है कि इस भावना में एक बहुत सबल रचना होती है, किन्तु होती है वह बड़ी ही भ्रमात्मक। सर्वोत्मक ध्यान वह होता है जो अकस्मात् तुम्हें प्राप्त होता है, क्योंकि वह तुम्हें एक अनिवार्य आवश्यकता की नाईं धर दबाता है ।

कठिनाइयों को जीतने के लिये उनसे दूर भाग जाना कोई समाधान नहीं है। यह आकर्षक बहुत है, आध्यात्मिक जीवन की खोज करने वालों में कोई चीज़ ऐसी होती है जो कहती है : ओह! किसी वृक्ष के नीचे, बिलकुल अकेले बैठ जाना, ध्यानमग्न बने रहना, बोलने और कार्य करने के किसी प्रलोभन में अब ना पड़ना, यह कितना सुन्दर होगा। इसका कारण यह होता है कि इस भावना में एक बहुत सबल रचना होती है, किन्तु होती है वह बड़ी ही भ्रमात्मक। सर्वोत्मक ध्यान वह होता है जो अकस्मात् तुम्हें प्राप्त होता है, क्योंकि वह तुम्हें एक अनिवार्य आवश्यकता की न्याईं धर दबाता है । तब तुम एकाग्र होने, ध्यान करने, बाह्य रूप से बहुत आगे दृष्टि-निक्षेप करने के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते और यह आवश्यक नहीं कि इस प्रकार के ध्यान की आवश्यकता तुम्हें वन के एकान्त में ही धर दबाये, ऐसा तो तब हुआ करता है जब अन्तर में कोई चीज़ तैयार हो जाती है, जब उसका मुहूर्त आ जाता है, जब उसकी सच्ची आवश्यकता हो जाती है, जब भगवत्कृपा तुम्हारे साथ होती है।

मैं जैसा देखती हूँ, मानवजाति ने प्रगति की है और सच्ची विजय जीवन में ही प्राप्त करनी है। तुम्हें

यह जानना चाहिये कि सब परिस्थितियों के बीच उन शाश्वत और अनन्त के साथ किस प्रकार एकाकी रहा जाता है।

तुम्हें यह जानना चाहिये कि सब धन्धों के बीच उन परात्पर सखा के साथ रहते हुये किस प्रकार मुक्त रहा जाता है। बस, यही है सच्ची विजय।

सादा जीवन

सादा जीवन ऐसे जीवन से जो फिजूल खर्ची, दिखावे और मिथ्यभिमान पर अवलम्बित है , कहीं अधिक वांछनीय है।

संसार की उन्नति में अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले श्रेष्ठ और उत्साही मनुष्य सदा ही शान्ति और मितव्ययता से रहना जानते हैं। ऐसा जीवन शरीर को भी स्वस्थ रखता है और मनुष्य को सर्वहित के कार्य में अधिकाधिक भाग लेने के योग्य बनाता है। ऐसे उदाहरणों से उन लोगों के सिर लज्जा से झुक जाते हैं जिन्होंने अपने चारों ओर निरर्थक चीजें जमक कर रखी हैं। और वे स्वयं भी अपने नौकर-चाकरों के दास के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते।

बिना गढ़ा खोदे टीला नहीं खड़ा किया जा सकता। एक का धन ऐश्वर्य प्रायः दूसरों की दुर्दशा का कारण होता है। इस संसार में बहुत से सुन्दर, महान तथा उपयोगी काम करना पड़े हैं। फिर यह कैसे संभव है कि ऐसे लोग जिनमें बुध्दि का सर्वथा अभाव नही है अपना समय, पैसे और विचारों को अनुपयोगी कार्यो में खर्च कर दें।

-श्रीमाँ

दिल्ली आश्रम की स्थापना-12 फरवरी 1956

सुरेन्द्रनाथ जौहर

जब मैं श्रीअरविन्द आश्रम की दिल्ली शाखा के इतिहास के सम्बंध में पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि जो आश्रम इस स्थान पर स्थापित हुआ है वह अवश्य ही किसी ऐसे बहुत लम्बे युद्ध का परिणाम और फल है जो कहीं ऊपर आध्यत्मिक स्तर पर लड़ा जा रहा था।

इसकी सारी कहानी इतनी मोहक व आकर्षक है जिस पर सहसा विश्वास करना कठिन है। ऐसा लगता है कि यह पुराणों के किन्हीं पृष्ठों से ली गई हो, परन्तु है तो एकदम असली और सच्ची। यदि इसका साक्षी मैं स्वयं ही नहीं होता तो इसका विवरण जानने पर मुझे भी ऐसा ही लगता कि यह तो एक ऐसी कहानी है जैसी कहानियों का वर्णन हमारे पुराणों में किया गया है और जिन्हें इस तर्क के युग में मनुष्य कल्पित या मनगढ़ण्त समझते हैं।

ऐसा समझिये कि पहले यहाँ पर आश्रम बनाने का कोई विचार, ख्याल अथवा स्वप्न भी नहीं था। किसी तरह का सुझाव, कोई नक्शा, खाका, ढाँचा और योजना तो कभी थी ही नहीं। फिर भी जब मैं इस भू-सम्पत्ति के बारे में, जोकि अब आश्रम के पास आ गई है, विचार करता हूँ तो इससे बहुत साफ़ जाहिर होता है कि यह भी किसी बड़े और लम्बे अभियान की पराकाष्ठा है जिसकी भगवान् के दरबार में कल्पना हुई, योजना बनी, उसका निश्चय किया गया व निर्णय लिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि सब देवताओं ने चाहा कि इस भूमि को इसकी अन्तर्निहित पवित्रता व पुनीतता प्रदान की जाये और यह प्रतिष्ठा की पात्र बने।

इस भूमि के आस-पास, जहाँ महलों के खण्डहर और भग्नावशेष, किले, मस्जिद और मन्दिर थे, आसुरिक शक्तियों को अवसर मिला और उन्होंने ऐसे वीरान और उजाड़ स्थानों पर अपना कब्जा जमा लिया। परन्तु देवताओं को भी यह स्थान अच्छा लगा और आकर्षण हुआ क्योंकि भगवान ने इस स्थान को अपने युग-परिवर्तनकारी कार्य के लिये पहले से ही नियोजित कर रखा था और अपने भविष्य के कार्य की महती योजना के लिये इसे चुनकर रखा था। इसलिये यह स्थान झगड़े का कारण बन गया और फलस्वरूप दैवी व आसुरिक शक्तियों के बीच घमासान युद्ध इसी स्थल पर छिड़ गया।

इस युद्ध के बीच सन् 1939-40 में यह भू-सम्पत्ति ख़रीद ली गई और आसुरिक शक्तियों ने यह स्पष्ट और साफ़ रूप से देखा कि दैवी शक्तियों ने उनके विरुद्ध अपना एक कदम आगे बढ़ा लिया है। यह देखकर आसुरिक शक्तियों ने दैवी शक्तियों के हरेक चरण पर अपनी विघ्न-बाधायें डालनी शुरू कर दीं। तीन बार तो यह भू-खण्ड कुछ कानूनी अड़चनों के कारण हाथ से निकल गया। अब इस स्थान में भवन-निर्माण सम्बन्धी जो कार्य हो चुका था उसे आर्किटेक्ट और इंजीनियरों ने आकर देखा और उन्होंने अपनी राय दी जिससे कि इस भवन का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस नये निर्माण में अभी थोड़ी ही प्रगति हुई थी कि सरकार की तरफ से तरह-तरह की नई समस्यायें- इसकी रूप-रेखा व धन-सम्बन्धी खड़ी हो गईं। काम में देरी पर देरी होने लगी जिसके परिणामस्वरूप मन में निराशा घर करने लगी।

फिर भी अनेक कठिनाइयों के बावजूद समय पाकर भवन के निर्माण का कार्य पूरा हो गया और यह प्रयास चलने लगा कि इस स्थान को सामाजिक, राजनैतिक और अन्त में लोककल्याण कार्य के लिये प्रयुक्त किया जाये। परन्तु ये धारणायें भी व्यर्थ सिद्ध हुईं और फिर से ये प्रयत्न प्रारम्भ हुए कि इस भवन तथा इसके साथ लगी हुई जो ज़मीन थी उसमें नर्सिंग-होम सहित एक बड़ा अस्पताल, कृषि-फार्म, छात्रालय, हवाई-जहाज़ चलाने वालों के लिये एक विश्राम-गृह और अमेरिकी सैनिकों के लिये कुछ लम्बी-लम्बी बैरकें बनाई जायें।

चूँकि उन दिनों द्वितीय विश्व-महायुद्ध चल रहा था इसलिये ये सब चीजें आवश्यक प्रतीत हुईं। परन्तु अन्त में ये सब धारणायें और योजनायें भी विफ़ल हो गईं और अब सन् 1947 में पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों की समस्या आ खड़ी हुई। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि लाखों निराश्रित लोगों को रहने का स्थान कहाँ और कैसे दिया जाये? शरणार्थी लोग सारी पुरानी छोटी-मोटी इमारतों के खण्डहरों मे, टूटे-फूटे हुए पुराने मकानों, स्थानों और यहाँ तक कि सड़कों के किनारों पर भी टिक गये थे, परन्तु इस भवन में कोई नहीं आया।

इस भूमि में दो सौ फीट गहरा एक ट्यूब-वेल खोदा गया लेकिन जब उसमें नीचे से अच्छे पानी का कोई आसार ही नज़र नहीं आया तब उसे भी छोड़ देना पड़ा। यह ज़मीन इतनी बंजर थी कि कोई फूल-फल, वृक्ष उगना तो दूर रहा, घास का एक तिनका भी यहाँ मानों सहन नहीं होता था। मनुष्य जाति तो एक तरफ, जानवरों तक को भी यहाँ रखना मुश्किल काम था। परन्तु फिर भी कुछ ही सालों के अर्से में चेष्टायें की गयीं और प्रारम्भ में कुछ गायें यहाँ रखी गयीं। जब ये गायें और इनके बछड़े मिलाकर अठारह के करीब हो गये थे तभी डाकू इन्हें उड़ा ले गये। सब लोगों की वर्षों की सामूहिक मेहनत, प्रयास और आगे की योजनायें सब खड्ड में पड़ गईं और बेकार हो गयीं।

इम तरह यह स्थान बहुत साल तक उजड़ा हुआ और वीरान पड़ा रहा। अन्धकार, टूटी-फूटी कब्रों और खण्डहरों से घिरे हुए इस बियाबान स्थान ने एक भयावनी जगह का रूप धारण कर लिया। डरावने जंगली जीव-जन्तुओं के जमाव का यह डेरा बन गया। भ्रष्ट और भयानक प्राणियों के लिये अन्धेरे और वीराने में यह खाने-पीने का मानो एक सैरगाह बन गया। चोर-डाकुओं के छिपने के लिये अड्डा हो गया और बड़े-बड़े चूहों, चमगादड़ और उल्लुओं ने भी इसे अपना बसेरा बना लिया। हर प्रकार के साँपों ने रहने के लिये बिल बना लिये और गीदड़ भी अपनी हुओ-हुओ की बोली से दिन-रात धरती-आकाश गुँजाने लगे। यह सब आसुरिक शक्तियों को तो बहुत अच्छा लगा और उन्होंने सोचा कि चलो अब यह स्थान भगवान् के काम के तो योग्य ही नहीं रहा। इस प्रकार यह स्थान आसुरिक शक्तियों का एक सुदृढ़ गढ़ बनता गया जो भागवत-कार्य के ऊपर हमला बोलने के लिये हमेशा उद्यत और तत्पर रहती थीं।

इसी समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जो तर्क से समझाई नहीं जा सकतीं। एक ऐसे व्यक्ति, जिनका मेरे साथ 1942 की क्रान्ति-'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय जेल में वास्ता पड़ा था परन्तु उसके पश्चात् उनका कुछ पता नहीं चला, एक दिन अचानक मेरे घर सन् 1955 में आ पहुँचे। मैं उस समय 27, औरंगज़ेब रोड पर रहता था। अजीब बात यह थी कि जब मेरी जान-पहचान इन सज्जन से पहले जेल में हुई थी तो पुलिस यह कभी पता नहीं लगा पाई कि वह हैं कौन? क्या उनका नाम है तथा उनके बाप का क्या नाम है और क्या उनका पता है? इस कारण पुलिस कभी

उनके विरुद्ध कोई मुकद्दमा भी ना बना सकी। बातचीत करने और देखने से तो वह बिल्कुल सनकी, झक्की और खब्ती मालूम होते थे। कहने लगे, "मैं भगवान् का दूत हूँ।" मैंने उनका अता-पता जानने की बहुत कोशिश की परन्तु कभी कुछ पता नहीं लगा। तो भी एक दिन वे कहने लगे,

"मैं इस समय एक विशेष लक्ष्य को लेकर आया हूँ और वह यह है कि आपका जो एक भवन कुतुब के रास्ते में है और जिसमें आसुरिक शक्तियों ने अपना डेरा जमाया हुआ है और अपना कब्जा किया हुआ है उस पवन में से मुझे उन आसुरिक शक्तियों को निकाल बाहर करना है।"

मैं उनकी बातों को सुनकर बड़ा हैरान हुआ। परन्तु वे शख्स तो शाम को अपने लक्ष्य पर चले ही गये। मैं तो यह कभी सोच भी नहीं सकता था ना आशा करता था और ना ही मान सकता था। दूसरे दिन प्रातः वे मेरे घर पर आ पहुँचे। उनका हाल बुरा था। फटे हुए कपड़े, सिर के बाल और दाढ़ी ऐसी बिखरी हुई जैसे कि बुरी तरह से पिटे हुए हों। आते ही कहने लगे-

"आसुरिक शक्तियों की ताकत बहुत अधिक थी जिसका मुझे अन्दाज़ भी नहीं था। इस कारण भयंकर युद्ध करना पड़ा। परन्तु मैं उन्हें मारकर छोड़ूँगा। हाँ! उनको जरूर हराकर छोड़ूँगा", ऐसा निश्चयपूर्वक कहते हुए वे चले गये।

अगले दिन प्रातः जब वे फिर मेरे घर आये तो इस बार उनकी हालत इतनी अधिक खराब थी- इतनी ख़स्ता थी और हाल इतना बेहाल था कि वे बिल्कुल टूटे हुए, चूर-चूर व क्षत्-विक्षत् अवस्था में थे। इसके विपरीत उनकी आँखों में थी विजय की एक चमक और वे उसी अद्भुत चमक से जगमगा रही थीं। भाव-भरे स्वर में वे बोले-

"आसुरिक शक्तियों ने डटकर मुकाबला किया और आखिरी दम तक हमारी घमासान लड़ाई चलती रही, परन्तु अब उनका समय खत्म हो चुका है और मैंने उन्हें पूरी तरह से निकाल बाहर फेंका है। अब यह भवन हमेशा के लिये भगवान के अवतरण के लिये खाली है।" अगली बार जब मैं पांडिचेरी आश्रम पहुँचा तो मैंने माताजी से प्रार्थना की कि आश्रम उद्घाटन के लिये कोई तिथि निश्चित कर दें। माताजी ने तुरन्त 12 फरवरी 1956 निश्चित कर दिया। मैंने कहा- "माताजी 21 फरवरी क्यों नहीं, जोकि बहुत महत्वपूर्ण है और आपका पवित्र जन्मदिन है।" माताजी ने कहा- "12 और 21 एक ही बात है, इसमें कोई अन्तर नहीं है।" माताजी ने आगे कहा- "बारह लोग इकट्ठे होकर प्रार्थना करें तो वह प्रार्थना मंजूर होती है।" तो इस प्रकार दिल्ली

अगली बार जब मैं पांडिचेरी आश्रम पहुँचा तो मैंने माताजी से प्रार्थना की कि आश्रम उद्घाटन के लिये कोई तिथि निश्चित कर दें।

माताजी ने तुरन्त 12 फरवरी 1956 निश्चित कर दिया। मैंने कहा- "माताजी 21 फरवरी क्यों नहीं, जोकि बहुत महत्वपूर्ण है और आपका पवित्र जन्मदिन है।" माताजी ने कहा- "12 और 21 एक ही बात है, इसमें कोई अन्तर नहीं है।" माताजी ने आगे कहा- "बारह लोग इकट्ठे होकर प्रार्थना करें तो वह प्रार्थना मंजूर होती है।"

तो इस प्रकार दिल्ली आश्रम की प्रतिस्थापना हुई।

माताजी एक दिन मुझसे कहने लगीं- **"मैं यहाँ की अपेक्षा दिल्ली में अधिक हूँ। मुझे आशा है कि तुम लोग वहाँ मेरी उपस्थिति अनुभव करते होगे।"**

आश्रम की प्रतिस्थापना हुई। माताजी एक दिन मुझसे कहने लगीं- “मैं यहाँ की अपेक्षा दिल्ली में अधिक हूँ। मुझे आशा है कि तुम लोग वहाँ मेरी उपस्थिति अनुभव करते होगे।” “दिल्ली आश्रम मेरे लिये अधिक महत्व का स्थान है। मैं आशा करती हूँ और पूरी उम्मीद करती हूँ कि दिल्ली आश्रम के माध्यम से श्री अरविन्द का बहुत-सा कार्य हो सकेगा।”

लक्ष्य:

मैंने माताजी से पूछा- “श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का लक्ष्य क्या है? माताजी यदि आप सन्देश के रूप में यह लिखकर दे दें तो कुछ बात साफ़ हो जाये।”माताजी ने कहा- “मैं अभी लिखकर दे देती हूँ।” और एक सुन्दर कार्ड पर यह सन्देश लिखकर दे दिया-

"यह स्थापना अपने नाम को सार्थक करे तथा संसार के प्रति श्रीअरविन्द की शिक्षा व सन्देश की सच्ची आंतरिक व प्रेरक शक्ति को अभिव्यक्त कर सके।"

मेरी आशीषों सहित,

-श्रीमाँ

12 फरवरी 2018

श्री अरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा का 62वाँ स्थापना दिवस मनाया गया। जिसमें प्रातः 7:00 बजे ध्यान कक्ष में श्रीला दीदी द्वारा मंगलाचरण और 9:30 हॉल ऑफ ग्रेस में 'द मदर इंटरनेशनल' के विद्यार्थियों द्वारा भक्ति गीत प्रस्तुत किये गये। 2 बजे 'हॉल ऑफ जॉय' में श्री अरविन्द आश्रम- दिल्ली शाखा पर फिल्म दिखायी गयी। सांय 7:00- ध्यान कक्ष में तारा दीदी द्वारा सावित्री पाठ, उसके बाद प्रसाद वितरण किया गया

थियेटर आफ रैलिवेन्स

रूपा गुप्ता

थियेटर आफ रैलिवेन्स- माना अपने से परिचय नजरिये को बदलना, हम हैं हम क्यूं हैं?

27 नवम्बर, 2017 श्री अरविंद आश्रम दिल्लीः थियेटर आफ रैलिवेन्स के माध्यम से मंजुल भारद्वाज और स्मृति ने थियेटर आफ रैलिवेन्स की एकत्व और जागरूकता की शक्तिशाली उर्जा के माध्यम से श्री अरविंद आश्रम विचारधारा को सार्थक करते हुए आश्रम की विभिन्न सांस्कृतिक परिवेश से आयीं युवा लड़कियों को आपस में जोड़ा।

युवा लड़कियों का नयी नयी चीजें सीखने के प्रति समर्पण ही सिद्धि है। समर्पण से आप जान जाते हैं कि आप ही प्रकाश हैं और आपको किसी अन्य के प्रकाश के पीछे जाने की आपको जरूरत नहीं पड़ेगी।

छोटी छोटी बातों से मंजुल जी ने जीवन की गहनतर समझ दी। हर व्यक्ति को खोलना उसमें यह भावना उत्पन्न करना कि हम सब समान हैं जैसे सब पहली दूसरी लाइन में बैठने से बँटे हुए लगते हैं एक दूसरे को देख नहीं पा रहे, जुड़न नहीं है, एकता नहीं प्रतीत होती जबकि गोले में बैठने से सब समान चेतना से घिर जाते हैं। बाहर खाने बने हुए हैं घर भी कमरों में बँटा हुआ है। दिल की दीवारें आपस में बाँट देती हैं। श्री अरविंद आश्रम की रूपरेखा षटकोणीय चारों तरफ से खुला हुआ है । सर्कल में बैठने से हम सब समान रूप से एक दूसरे से जुड़ जाते हैं ना कोइ आगे ना कोइ पीछे। व्यक्ति का सम्मान करें उसको भाषा की कैद में ना बांधें।

हम सब एक हैं इसको हृदय तक उतारने का काम मंजुल जी के इस छोटे सरल गीत ने किया जिसे सबने बहुत उत्साह से बार बार गायाः

एकता की गूँज 'हम हैं'-
गूँज ये हमारी
हमको सबसे प्यारी
सुनो तुम हमारी दिलों की धड़कनें
देखो तुम हमारी ये प्यारी सूरतें
भोली मूरतें
हम हैं।

हम हैं-

पहल कीजिये, खुद से शुरूआत कीजिये- जीवन दर्शन हमें डर क्यों लगता है क्यों कि कोइ बात हमारे लिये अनजान है, हम अपने आप पर विश्वास क्यूं नहीं करते। ये लड़ाई डर के चक्र को तोड़ने की है जब हम अपनी जगह पर खड़े रहते हैं, दिमाग की बेड़ियां तोड़ने, बीच में आने की पहल जो जीतता है वही अपने जीवन में सही शुरूआत करता है बुलाना नहीं खुद आना। मौका अपने हौसले को आजमाने का है चार कदम खुद आगे आना -जीवन हमारा है इसको जीने की जिम्मेदारी भी हमारी है। कोइ भी आपका जीवन जीने में मदद कर सकता है लेकिन मेरा जीवन है मुझे जीना है । हम अपने घर में बैठे रहते हैं और चाहते हैं कोइ हमें धक्का मारे, क्या हम अपना जीवन धक्का मार गाड़ी की तरह चलाना चाहते हैं।

समझ के अनुसार ही कोइ पढ़ा लिखा कहला सकता है।

खुद सीखो, खुद से सीखो। अपना जीवन स्वयं बनाओ हँसते हँसते मंजिल पाओ, संघर्षों का करो सामना जीवन का तुम आनन्द पाओ, खुद सीखो, खुद से सीखो जीवन में आओ पहल करें ना घबरायें ना घबरायें एक कदम हम आगे बढ़ायें खुद सीखो, खुद से सीखो। हम नये पाठ सीख लेते हैं अमल में नहीं लाते । गर्मजोशी से स्वागत करें, मुस्करायें, पहल की है तो जोर से करें नयी और अनोखी पहल में सारे साथ में नहीं आते कोई एक होता है। भीतर की दीवारों को तोड़ो, बाहर की दीवारें दिशा देती हैं रक्षा करती हैं। लिखो आज आपने कौन सी दीवारें तोड़ीं-डर की, संकोच की, शर्म की उम्र की, पद की, हिचक की। डर स्वाभाविक है डरते डरते घबराते घबराते कीजिये मगर पहल कीजिये।

डरना डराना छोड़ो, इन दीवारों को तोड़ो पहल करो पहल करो, आत्मविश्वास से आगे बढ़ो। शेर अकेले और कमजोर हिरन का शिकार करता है। अपने हाव भाव से कभी यह संदेश मत दो कि आप अकेले हैं और डरे हुए हैं सबसे पहला काम है आत्मरक्षा।

हम हैं हम यहां क्यूं हैं? कुछ करने के लिये कुछ की क्या परिभाषा है, कुछ कुछ के चक्कर में हम अपने जीवन को कुछ का कुछ बना लेते हैं और हमारे जीवन का मालिक कोइ और बन जाता है। क्या शरीर को ढोना मात्र जीवन है जीवन का जिसने मतलब पाया उसी ने जीवन जिया है। हम इन्सान पहले हैं। कुछ कुछ की धुंध हट जाती है तो हमारे आधे से ज्यादा कष्ट हट जाते हैं जीवन में कभी एक्टर मत बनना जिंदगी जीने का नाटक बंद कीजिये। नाटक थियेटर में कीजिये लेकिन जिंदगी जैसी आप जीना चाहते हैं वैसी जियें। हम यहाँ प्रेम बाँटने के लिये हैं

अंत में मंजुल जी ने सबसे पूछा आज क्या सीखाः सबने बहुत गर्मजोशी और उत्साह से उत्तर दियेः एकता, आगे बढ़ो, डरना नहीं, आत्मविश्वास, साहस, पहल करना, हम हैं तो क्यूं हैं, एकत्व में रहने वाले को कोइ हरा नहीं सकता, सहायता, अपनापन।

और इस खूबसूरत गीत के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ जिसकी गूंज दिलों में प्रेम और अपनापन बन कर गूँजती रहेगी।

......जिंदगी के सुर से सुर को मिला, खूबसूरत है जिंदगी....

स्थिरता, शांति, समता

श्री अरविन्द

अगर मन चंचल हो तो योग की नींव डालना संभव नहीं। सबस पहले यह आवश्यक है कि मन अचंचल हो और व्यक्तिगत चेतना का लय कर देना भी इस योग का प्रथम उद्देश्य नहीं है, बल्कि प्रथम उद्देश्य है व्यक्तिगत चेतना को एक उच्चतर आध्यात्मिक चेतना की ओर खोल देना और इसके लिये भी जिस बात की सबसे पहले आवश्यकता है वह है मन की अचंचलता।

सबसे पहली बात जो साधना में करनी है वह है मन में एक सुस्थापित शांति और निश्चल-नीरवता को प्राप्त करना। अन्यथा तुम्हें अनुभूतियाँ तो हो सकती हैं, पर कुछ भी स्थायी नहीं होगा। एकमात्र निश्चल-नीरव मन में ही सत्य-चेतना का निर्माण किया जा सकता है।

अचंचल मन का अर्थ यह नहीं है कि उसमें कोई विचार या मनोमय गतियाँ एकदम होंगी ही नहीं, बल्कि यह अर्थ है कि ये सब केवल ऊपर-ही-ऊपर होंगी और तुम अपने अंदर अपनी सत्य सत्ता को इन सबसे अलग अनुभव करोगे, जो इन सबको देखती तो है पर इनके प्रवाह में बह नहीं जाती, जो यह योग्यता रखती है कि इस सबका निरीक्षण करे और निर्णय करे तथा जिन चीज़ों का त्याग करना है उन सबका त्याग करे एवं जो कुछ सत्य-चेतना और सत्य-अनुभूति है, उन सबको ग्रहण और धारण करे।

मन का निष्क्रिय होना अच्छा है, पर इस विषय में सावधान रहो कि तुम केवल सत्य के सामने तथा भागवत शक्ति के संस्पर्श के सामने ही निष्क्रिय भाव रखते हो। अगर तुम निम्न प्रकृति की सुझायी हुई बातों और उसके प्रभाव के प्रति वैसा निश्चेष्ट भाव बनाये रहोगे तो तुम अपनी साधना में उन्नति नहीं कर सकोगे अथवा तुम ऐसी विरोधिनी शक्तियों के पंजे में पड़ जाओगे जो तुम्हें योग के सच्चे मार्ग से बहुत दूर ले जा सकती हैं।

श्रीमाँ के सामने यह अभीप्सा करो कि तुम्हारे मन में यह अचंचलता और शांति सुप्रतिष्ठित हो और तुम्हें बाह्य प्रकृति के पीछे वर्तमान ज्योति और सत्य की ओर उन्मुख इस आंतर सत्ता का बोध निरंतर बना रहे। जो शक्तियाँ साधना के मार्ग में बाधा पहुँचाती हैं वे निम्नतर मानसिक, प्राणिक और भौतिक प्रकृति की शक्तियाँ हैं। उनके पीछे मनोमय, प्राणमय और सूक्ष्म-भौतिक जगतों की विरोधी शक्तियाँ हैं। इन सबका मुकाबला केवल तभी किया जा सकता है जब मन और हृदय एकमात्र भगवान् की ही अभीप्सा में एकाग्र और केंद्रित हो चुके हों।

निश्चल-नीरवता सदा ही अच्छी है; पर मन की अचंचलता से मेरा मतलब यह नहीं है कि मन बिल्कुल ही निश्चल-नीरव हो जाये। मेरा मतलब यह है कि मन सब प्रकार की हलचल और बेचैनी से मुक्त हो, धीर-स्थिर, शांत और प्रसन्न हो जिसमें वह अपने-आपको उस शक्ति की ओर खोल सके जो प्रकृति का रूपांतर करेगी। प्रधान बात यह है कि बेचैन करने वाले विचारों, विकृत अनुभवों, भावनाओं की उलझनों तथा दुःखदायी वृत्तियों को मन पर निरंतर आक्रमण करते रहने की जो आदत पड़ जाती है उससे छुटकारा पाया जाये, ये सब चीज़ें प्रकृति में विक्षेप उत्पन्न करती हैं, उसे आच्छादित करती हैं और दिव्य शक्ति के लिये कार्य करना कठिन बना देती हैं। जब मन अचंचल और शांत होता है तब दिव्य शक्ति अधिक आसानी

से अपना काम कर सकती है। तुम्हारे लिये यह संभव होना चाहिये कि तुम अपने अंदर की उन सब चीज़ों को बिना घबड़ाये हुए या अवसन्न हुए देख सको जिनका परिवर्तन करना आवश्यक है और तब परिवर्तन और भी अधिक आसानी से हो सकता है।

शून्य मन और स्थिर मन में भेद यह है कि जब मन शून्य हो जाता है तब उसमें कोई विचार नहीं रहता, कोई धारणा नहीं रहती, किसी प्रकार की कोई मानसिक क्रिया नहीं होती, केवल वस्तुओं की एक मूलगत प्रतीति होती है, उनके विषय में कोई बंधी-बंधायी भावना नहीं होती। किंतु स्थिर मन में मनोमय सत्ता का सारतत्व ही शांत हो जाता है, इतना शांत हो जाता है कि कोई भी चीज़ उसे विचलित नहीं करती। यदि विचार आते या क्रियाएँ होती हैं तो वे मन में से बिल्कुल ही नहीं उठतीं, बल्कि वे बाहर से आती हैं और ठीक वैसे ही मन में से होकर गुजर जाती हैं जैसे पक्षियों का दल निर्वात आकाश में से होकर गुजर जाता है। वह गुजर जाता है, कहीं कोई हलचल नहीं मचाता, कहीं कोई चिह्न नहीं छोड़ जाता। यदि हज़ारों आकृतियाँ या अत्यंत प्रचंड घटनाएँ भी मन के भीतर से होकर गुजरें तो भी उसकी शांत अचंचलता बनी रहती है, मानों उस मन की रचना ही एक शाश्वत और अविनाशी शांति के तत्व से हुई हो। जिस मन ने इस स्थिरता को प्राप्त कर लिया है वह कार्य करना आरंभ कर सकता है, यहाँ तक कि तीव्रता और शक्तिश के साथ कार्य कर सकता है, पर फिर भी वह अपनी मूलगत निस्तब्धता को बनाये रखेगा- वह अपने भीतर से कुछ भी नहीं उत्पन्न करेगा, बल्कि ऊपर से जो कुछ आयेगा उसे वह ग्रहण करेगा और उसे एक मानसिक रूप प्रदान करेगा, उसमें अपनी ओर से कुछ भी नहीं मिलायेगा, और यह सब वह धीर-स्थिर और अनासक्त होकर करेगा, यद्यपि करेगा सत्य के आनंद के साथ तथा सत्य के आत्मप्राकट्य की सुखदायी शक्ति और ज्योति के साथ।

निश्चल-नीरव हो जाना, विचारों से मुक्त तथा निस्स्पंद हो जाना मन के लिये कोई बुरी बात नहीं है- कारण, प्रायः ही जब मन निश्चल-नीरव हो जाता है तब ऊपर से एक सुविशाल शांति का पूर्ण अवतरण होता है और उस विशाल शांतावस्था में उस शांत आत्मा का साक्षात्कार होता है जो मन से ऊपर अपनी बृहत् सत्ता को सर्वत्र फैलाये हुए है। परंतु इस अवस्था में कठिनाई यह होती है कि जब यह शांति और मन की निश्चल-नीरवता प्राप्त हो जाती है तब प्राणमय मन तेजी से भीतर घुस आने और उस स्थान को अधिकृत करने की चेष्टा करता है अथवा उसी उद्देश्य से यंत्रवत्-चालित मन अपने तुच्छ अभ्यासगत विचारों की परंपरा को जारी करने की कोशिश करता है। इस अवस्था में साधक को चाहिये कि वह सावधानी के साथ इन सब आगंतुकों को दूर हटा दे तथा इन्हें एकदम शांत कर दे जिससे कम-से-कम ध्यान के समय मन और प्राण की शांति और स्थिरता पूरी मात्रा में बनी रहे। अगर तुम दृढ़ और शांत संकल्प बनाये रखो तो तुम इस कार्य को सबसे उत्तम रूप में कर सकते हो। इस तरह का संकल्प उस पुरुष का संकल्प होता है जो मन के पीछे रहता है; जब मन शांत हो जाता है, जब वह निश्चल-नीरव हो जाता है तब हम उस पुरुष को जान सकते हैं जो पुरुष प्रकृति की क्रिया से अलग है और निश्चल-नीरव भी है।

शांत, धीर-स्थिर, आत्मप्रतिष्ठित होने में मन की यह अचंचलता, बाह्य प्रकृति से आतंर पुरुष की यह पृथकता बहुत सहायक होती है, प्रायः अनिवार्य होती है। जबतक हमारी सत्ता विचारों के भंवर में फँसी रहती है अथवा प्राणमय गतियों के विक्षोभ से प्रभावित होती है तब तक हम इस तरह शांत तथा आत्मप्रतिष्ठित नहीं हो सकते। इन सबसे अपने-आपको अलग करना,

इनसे हटकर पीछे खड़ा होना, इन्हें अपने-आपसे पृथक् अनुभव करना अत्यंत आवश्यक है।

अपने वास्तविक व्यक्तित्व को खोज निकालने के लिये तथा अपनी प्रकृति में उसे मूर्तिमान् करने के लिये दो चीज़ों की आवश्यकता है- पहली चीज़ है हृदय के पीछे रहने वाले अपने अंतरात्मा के विषय में सचेतन होना तथा दूसरी है प्रकृति से पुरूष की यह पृथक्ता। क्योंकि हमारा सच्चा व्यक्तित्व पीछे है और बाह्य प्रकृति की क्रियाओं के द्वारा ढका हुआ है।

शांति की एक महान् लहर (अथवा समुद्र) और एक सुविशाल ज्योतिर्मय सद्वस्तु का निरंतर बोध-ये दोनों बातें स्पष्ट रूप में परम सत्य की उस मूलगत उपलब्धि को सूचित करने वाली हैं जो मन और अंतरात्मा पर उस परम सत्य का प्रथम संस्पर्श होने पर प्राप्त होती है। इससे अधिक अच्छे प्रारंभ या स्थापना की कामना नहीं की जा सकती – यह उस चट्टान के समान है जिसके आधार पर बाकी सब कुछ निर्मित किया जा सकता है। निश्चय ही इसका अर्थ "कोई एक उपस्थिति" नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है "वही एकमात्र (भागवत्) उपस्थिति" और अगर इस अनुभूति को किसी तरह अस्वीकार करके या इसके स्वरूप के विषय में संदेह करके इसे दुर्बल बना दिया जाये तो यह बड़ी भारी भूल होगी।

इसकी कोई परिभाषा करने की कोई आवश्यकता नहीं और ना किसी को इसे किसी एक रूप में परिवर्तित करने की चेष्टा ही करनी चाहिये। क्योंकि यह उपस्थिति अपने स्वभाव में अनंत है। अगर वह साधक की ओर से निरंतर स्वीकृति होती रहे तो इसे अपना या अपने अंदर से जो कुछ अभिव्यक्ति करना है उसे यह अनिवार्य रूप से और स्वयं अपनी ही शक्ति से करेगी।

समर्पण

श्रीमाँ

सच्चा समर्पण तुम्हें विशाल बनाता है, तुम्हारी क्षमता की वृद्धि करता है, तुम्हारे गुण और मात्रा को इतने अधिक परिमाण में बढ़ाता है जितना कि तुम स्वयं नहीं बढ़ा सकते थे और गुण और मात्रा की यह नई वृद्धि पहले जो कुछ तुम प्राप्त कर सके होंगे उससे भिन्न प्रकार की होती है। अब तुम किसी दूसरे ही जगत में, किसी विशालता में प्रवेश कर जाते हो, जिसके अन्दर तुम समर्पण किये बिना नहीं पहुँच सकते थे। इस बात को ऐसा ही समझो जैसे कि समुद्र में गिरी हुई जल की एक बूँद। यदि वहाँ भी वह बूँद अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखे तो वह जल की एक छोटी सी बूँद ही बनी रहेगी, इससे अधिक और कुछ नहीं बन सकेगी, एक छोटी सी बूँद जिसे इर्द-गिर्द की अपार विशालता कुचल रही होगी, कारण उसने समर्पण नहीं किया है। परन्तु समर्पण कर देने पर वह उस समुद्र के साथ एक हो जाती है और समग्र समुद्र की प्रकृति और शक्ति और विशालता का अंग बन जाती है।

इस समर्पण सम्बन्धी गति में किसी तरह की संदिग्धता या अस्पष्टता नहीं होती, यह स्पष्ट होती है, बलवान् होती है और निश्चित होती है।

यदि कोई छोटा-सा मानव-मन भागवत विराट् मन के सामने खड़ा हो और फिर भी अपने पृथकत्व से चिपका रहे, तो यह वह जो कुछ है वही बना रहेगा, एक छोटा-सा परिसीमित पदार्थ जो उच्चतर सद्वस्तु के स्वभाव को नहीं जान सकता, उसके स्पर्श तक को नहीं पा सकता। ये दोनों एक दूसरे से अलग बने रहते हैं और गुण रूप से तथा मात्रा रूप से भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न रहते हैं। परन्तु यदि वह छोटा-सा मानव-मन समर्पण करे तो वह भागवत विराट् मन में निमग्न हो जायेगा, गुण और मात्रा में भी उसके साथ एक हो जायेगा और इस कार्य में यदि वह कुछ खोयेगा तो केवल अपनी सीमाओं को और अपनी विकृतियों को और इससे पा लेगा अपनी विशालता को और प्रकाशमान विमलता को। उसके इस छोटे से अस्तित्व का अपना स्वभाव बदल जायेगा और जिस महत्तर सत्य को वह समर्पण करता है उसके स्वभाव को वह धारण कर लेगा। परन्तु यदि वह विराट् मन का प्रतिरोध करे, उसके साथ युद्ध करे, उसके विरुद्ध विप्लव करे, तो इसका तो यही परिणाम होगा कि इन दोनों के बीच एक लड़ाई छिड़ जायेगी और विराट् मन का मानव-मन पर दबाव पड़ेगा और इस संग्राम में जो निर्बल और छोटा है वह बलवान् और बड़े की शक्तिमत्ता और अमितता में समा जाये, इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।

प्रभु - कृपा

करुणामयी

'एको ' सुर साधे – हरि: आराधे
ज्योति शक्ति ज्ञान धार
योग समाराधे ॥ प्रेम योग साधे ॥
तज / त्याग सीमित जीव – भाव
मुक्त होय सो दशम द्वार
परम ब्रह्म में समाय
परम आनन्द पावे / लावे ॥

ज्योति परम पावे
सुर –लय अवगाहे ॥
ज्योति परम घ्यावे ॥

आनन्द सरसावे ॥
सुरानन्द - सरसावे
सृष्टि सार घ्यावे ॥ पावे ॥
ज्योति परम घ्यावे ॥
शक्ति/ प्रेम बुध्दि पावे

ज्ञान परम पावे
सृष्टि सार साधे ॥
परम सखा रिझावे ॥
प्रभु - प्रेम - पावे
परम सार पावे ॥
सृष्टि में
सृष्टि ज्योतित पावे
सत्ता एक साधे ।

प्रवेश द्वार पर

लगता है किसी अनजाने देश के

प्रवेशद्वार पर खड़ी हूँ।

स्वदेश को छोड़ कर,

सीमाओं को तोड़ कर,

नव जागृति, नयी अनुभूति को

मूर्तिमान देखने की कामना से;

धीरे-धीरे यवनिका उठने लगी,

धूमिल वातावरण में से वास्तविकता

एक झलक में मुखरित हुई;

सुखद है या दुखद,

कौन जाने; पर प्रखर है,

इतना मैं जान गई।

सदा सुख कैम्प

16 नवम्बरः सदा सुख में प्रातः 9 बजे से सांय 4 बजे तक वहां के स्थानीय निवासियों के लिये निःशुल्क नेत्र परीक्षण और सामान्य स्वास्थय हेतु कैम्प का आयोजन किया गया। दिन का प्रारम्भ सुबह 6:30 हमारे बैडमिन्टन कोर्ट में हवन के साथ हुआ। जलपान के उपरान्त दिल्ली से डा0 नदीम, डा0 कुन्दन और डा0 लोपा और 3 पैरामैडिकल कार्यकर्ताओं ने लगभग 180 मरीजों का चिकित्सीय परीक्षण किया। यूनिफायर्स के विद्यार्थियों ने डाक्टर्स की अनुवाद, मरीज परीक्षण, चाय वितरण और पूरे दिन का कार्यक्रम सुचारू रूप से चलाने में सहायता की।

निःशुल्क दवाई व 100 से अधिक देखने के चश्में वितरित किये गये। पराचिकित्सीय विभाग ने ब्लड प्रेशर लेने, रक्त में शर्करा की जांच करने और दवाई काउन्टर लगाने में सहायता की। दिल्ली आश्रम कार्यकर्ताओं ने रजिस्ट्रेशन काउन्टर और सभी मरीजों की गणना आदि का प्रबन्धन किया जिससे सभी मरीजों की ठीक प्रकार से देखभाल की जा सके। विशिष्ट चश्मों और विशेषज्ञ अस्पताल में कैटेरेक्ट से पीड़ित आंखों के ऑपरेशन के लिये आगे कार्यवाही के लिये लगभग 20 मरीजों के पर्चे दिल्ली लाये गये।

आश्रम कार्यकर्ता, बुनाई विभाग की महिलायें और विद्युत विद्यार्थियों का भी कैम्प के दौरा पूर्ण परीक्षण किया गया।

(प्रस्तुति व अनुवादः रूपा गुप्ता)

सच्ची दया

(श्रीमाँ)

साधारणतया लोग दया का अर्थ यह समझते हैं कि अपने किसी मानव भाई को भौतिक सहायता दी जाये, गरीबों को भिक्षा, बीमारों को दवा, जिन्हें आवश्यकता हो उन्हें धन या सामग्री दी जाये तथा जहाँ जरूरी हो वहाँ शारीरिक सेवा भी की जाये। यह सब बहुत अच्छा और उपयोगी है। यह संसार रोगों और अभावों और विपदाओं से जर्जरित हो रहा है और यदि उन्हें हल्का करने के लिये कुछ किया जाये तो यह उचित ही है और इस दिशा में किये गये कार्य पूरा प्रोत्साहन पाने के योग्य हैं। परन्तु यह काफी दूर तक नहीं जाता व सच्ची दया की जड़ को स्पर्श भी नहीं करता। यह वस्तुओं के साथ व्यवहार करने का मानवीय ढंग है और स्वभावतः ही अपने क्षेत्र और परिणाम में बहुत सीमित है। एक उच्चतर, दिव्यतर पद्धति भी है- आत्मा की पद्धति जिससे पार्थिव विपत्तियों को दूर किया जा सकता है, केवल हल्का ही नहीं बल्कि उनका पूरा शमन किया जा सकता है। ईसा और बुद्ध के संदेश के पीछे यही दिव्य ज्ञान गुप्त रूप से विद्यमान था।

यह बात सच नहीं है कि जब किसी के अभाव की पूर्ति हो जाती है तो वह सर्वदा प्रसन्न हो जाता है। सभी गरीब लोग अप्रसन्न नहीं होते, ना सभी धनाढ्य निरन्तर प्रसन्न ही रहते हैं। प्रसन्न रहना एक गुण है जो किसी अन्य वस्तु पर निर्भर है और किसी अन्य स्थान से आता है: यह सीधे तौर पर भौतिक समृद्धि के अनुपात में नहीं प्राप्त होता। अप्रसन्नता भी एक मनोवैज्ञानिक वस्तु है और मन तथा प्राणशक्ति और फलतः भौतिक सत्ता के किन्हीं विशिष्ट प्रकंपनों पर निर्भर है जो आंतरिक व्यक्तित्व के मर्मस्थल में स्वयं चेतना के अन्दर कोई ऐंठन होने के कारण उत्पन्न होते हैं। भौतिक अवस्थायें महज उसके व्यक्त होने में सहायक होती हैं, उसे बनाये रखती या बढ़ा देती हैं, परन्तु उसे उत्पन्न नहीं करतीं – सच पूछा जाये तो वे ही इसके द्वारा सृष्ट होती हैं, यही कारण है कि आध्यात्मिक चिकित्सक सर्वदा ही शारीरिक बीमारियों के लिये भी, रोग विपत्ति और मृत्यु के लिये भी एकमात्र औषध के रूप में आत्मा के आनन्द की ही ओर संकेत करते हैं और दुःखी मर्त्य जीवों से सदा ही अपनी विपत्ति के समय एकमात्र भगवान् की ओर मुड़ने के लिये कहा जाता है- 'भजस्व माम'।

सच्ची दया है उस घाव पर मलहम लगाना जो उसी मूलस्रोत और पोषक वस्तु से उत्पन्न सभी बाहरी आपदाओं के पीछे छिपा हुआ है और यह गुण एकमात्र उसी के अधिकार में होता है जिसने आत्मा का आनन्द प्राप्त कर लिया है और उसी में निरन्तर निवास करता है। ऐसे व्यक्ति को निरोग करने और आराम पहुँचाने के लिये किसी बाहरी उपसाधन की आवश्यकता नहीं होती। यह आवश्यक नहीं कि वह ऊपर से दिखायी देने वाला कार्य करे ही, संभव है कि वह एकदम असंपृक्त और उदासीन प्रतीत हो। परन्तु स्वयं उसकी उपस्थिति ही निरोग करने वाली शक्ति होती है: रोगी इसे अनुभव करता है और उस आराम और अप्रसन्नता पर आश्चर्य करता है जो उसके अन्दर प्रवेश तो करती है पर ऐसा लगता है कि वे कहीं से आ नहीं रही है। बहुत से चिकित्सकों में इस प्रकार की रोग-निवारिणी शक्ति रहती है, निःसन्देह उसके बिना, महज दवादरू जानने वाला व्यक्ति, अपने पूरे भैषज्य भण्डार के साथ, जरा भी चिकित्सक नहीं है। इस बात को भले ही सब लोग ना जानते या स्वीकार

करते हों, पर यह सच है कि दवाओं की उपयोगिता का बहुत अंश उस सूक्ष्म प्रभाव, उस प्राणिक स्वास्थ्य पर निर्भर रहता है जिसे चिकित्सक अपनी दवा में डालता है अथवा सीधे अपने रोगी के शरीर में डालता है और एक आध्यात्मिक भिषक का जहाँ तक प्रश्न है, उसमें तो यह शक्ति अनिश्चित मात्रा तक बढ़ायी जा सकती है। यह आवश्यक नहीं कि चिकित्सक रोगी के पास शरीरतः उपस्थित ही हो, उसका प्रभाव किसी भी दूरी से अच्छी तरह कार्य कर सकता है। यह बिल्कुल स्वाभाविक और अनिवार्य है क्योंकि रोग-निवारिणी शक्ति आध्यात्मिक चेतना में होती है। मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति और वस्तु के साथ अपने आत्मा के अन्दर, अपनी सच्ची सत्ता और उपादान के अन्दर एकाकार हो जाता है। जिस प्रकाश और प्रसन्नता को वह वहाँ प्राप्त करता है वे एक सहज-स्वाभाविक धारा में अविच्छेद्य रूप से दूसरों में जाते हैं, जो वास्तव में दूसरे नहीं हैं बल्कि उसी एक आत्मा के अखण्ड अंग और अंश हैं।

यह अवस्था पूर्णतम और उच्चतम रूप में तभी प्राप्त होती है जब मनुष्य सम्पूर्णतः अहंकार रहित हो जाता है, जब एक पृथक् व्यक्ति होने की चेतना उसे नहीं रहती, जब सहायक और सहायता-प्राप्त की, संशोधक और संशोधित की, चिकित्सक और रूग्ण की द्विविध चेतना लुप्त हो जाती है। सामान्य मनुष्य को किसी वस्तु के मूल्य-महत्व का जो बोध होता है वह ऐसे ही विभाजन पर, अहं-बोध पर, ममत्व पर आधारित होता है। परोपकारी व्यक्ति सहानुभूति का बोध होने के कारण दूसरों की सहायता करता है और वह सहानुभूति उसमें कर्तव्य और दायित्व की भावना उत्पन्न करती है। पर दुःखकातर होकर कृपा दिखलाने की यह वृत्ति खतरनाक होती है क्योंकि यह तुम्हें एक ऐसी मानसिक स्थिति में ला रखती है जिससे कि तुम अपनी कृपा के पात्र को अपने से हीन और अपने को उससे श्रेष्ठ समझते हो। तुम अपने विषय में चेतन, अपने निम्नतर स्वरूप की चेतना द्वारा सजग बन जाते हो और उससे यह भाव जागता है कि मैं दूसरों की सहायता कर रहा हूँ, संसार की भलाई कर रहा हूँ, कुछ ऐसा कार्य कर रहा हूँ जो मेरा मूल्य बढ़ा रहा है। अपने व्यक्तिगत गुण का यह बोध सच पूछा जाये तो मिथ्याभिमान का ही एक दूसरा रूप है। मिथ्याभिमान और महत्वाकांक्षा वे प्रेरक शक्तियाँ हैं जो सहानुभूति से उद्भूत परोपकार-भावना के पीछे विद्यमान रहती हैं। 'सहानुभूति' शब्द के द्वारा सामान्यतया जो भाव प्रकट होता है उससे कुछ भिन्न भाव को सूचित करने के लिये आधुनिक मनोविज्ञान ने एक दूसरा शब्द अंग्रेजी में 'Empathy' (हिन्दी में इसे 'संवेदन' कह सकते हैं) को खोज निकाला है। 'सहानुभूति' को हम दो अहंकारों के बीच होनेवाला सम्पर्क या संस्पर्श कह सकते हैं। यह दो पृथक् और स्वतंत्र सत्ताओं के मध्य विद्यमान एक श्रृंखला या पुल है। इसके विपरीत संवेदना का तात्पर्य है दूसरे की सत्ता और चेतना में प्रवेश करना, वह दूसरा व्यक्ति बन जाना। यह एकत्व और तादात्म्य की अवस्था है। यह फिर वही चीज़ है जिसे एकमात्र आध्यात्मिक चेतना ही कर सकती है। सहानुभूति परोपकार कराती है, 'संवेदना' सच्ची दया का, किसी बुद्ध या किसी ईसा की आध्यात्मिक करूणा का मूलस्रोत है।

परोपकार-वृत्ति मानवीय है, पर 'संवेदनायुक्त सच्ची दयावृत्ति' दिव्य है।

हिमालय का फ़क़ीर

डॉ. के. एन. वर्मा

(गतांक से आगे-)

उनका चुम्बकीय क्षेत्र

जो भी व्यक्ति जाने-अनजाने उनके विस्तृत प्रभामण्डल या चुम्बकीय क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ, हमेशा के लिये पकड़ा गया। वे दिव्य जीवन की तरंगों और उनके स्पन्दनों के विज्ञान को अच्छी तरह समझते थे और उन्हें जीते थे। वे दूसरों को इन दैवी स्पन्दनों के जाल में तो फँसाते ही थे, वे दूसरों के अदिव्य स्पन्दनों से अपनी रक्षा करने का गुर भी जानते थे। वे लोग जो उनके इन दिव्य स्पन्दनों के बारे में अवगत थे अकसर इन्हें घेरे रहते थे, इन्हें स्पर्श करते रहते थे और इनसे लिपट भी जाते थे। मुझे यह सब तब ज्ञात हुआ जब एक संध्याकालीन प्रार्थना में उन्होंने मेरे कान में यह कहते हुये आपसी समझौता किया, 'मुझसे सटकर बैठिये वरना वे महिलायें आकर झट से मेरे और आपके बीच में बैठ जायेंगी। इन संसारी लोगों के स्पन्दन बहुत बुरे होते हैं; बहुत सारे मेरे कष्ट इन स्पन्दनों के कारण ही मुझे भोगने पड़ते हैं।' कितने ही व्यक्ति, उदाहरणार्थ, डॉ. के. आर. श्रीनिवास आयंगर, कुलपति डॉ. डी. एस. कोठरी, पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री शिवदयाल जी, पूर्व न्यायाधीश श्री रंगराजन, आचार्य कृपलानी, पूर्व वाइस मार्शल श्री सुरेन्द्र जी, स्वामी नित्य चैतन्य यती जैसे कितनी ही हस्तियां उनके कुछ क्षणों के सत्संग से प्रेरणा लेने और हँसी-मजाक के बीच अमूल्य स्पन्दनों का स्पर्श पाने के लिये सत्संग में आती रहती थीं। तनिक सी भी ग्रहणशीलता के लोग उनकी ओर बरबस खिंच आते थे, क्योंकि उनका सामीप्य अत्यधिक आकर्षक था। यही लोग बाद में आश्रमवासी हो जाते थे।

मेरे मित्र श्री नलिन ढोलकिया मेरे साथ पहली बार नैनीताल गये। उनका उद्देश्य तो खाली सैर सपाटा व मनोरंजन ही था। एक दिन सामूहिक प्रार्थना के समय उन्होंने ढोलकिया जी को बड़े स्नेह से बुलाकर अपने पास बैठ जाने को कहा। उसके बाद उन्हें नित्य प्रति अपने पास बिठाने लग गये। मैं तुरन्त समझ गया- ये गये काम से। वही नलिन जी जो कभी श्री अरविन्दाश्रम व उसकी गतिविधियों के बड़े आलोचक हुआ करते थे, उसके बाद ना केवल आश्रमवासी बन गये बल्कि नैनीताल स्थित वननिवास के प्रभारी का पूरा दायित्व ही संभाल लिया। उसे वे आज भी संभाल रहे हैं। अब तो स्थिति यह है कि उनका मन वननिवास में अनुरक्त हो चुका है और रीवा के घर द्वार सहित सारी दुनिया से मोहभंग हो गया है।

आत्म परिचय

माँ मन्दिर में हुये प्रथम अखिल भारतीय साधना सम्मेलन (1979) के अवसर पर प्रत्येक कार्यकर्ता को अगले ही दिन होली-मिलन के अवसर पर अपना परिचय स्वयं देना होता था। यह कार्यक्रम बहुत रोचक था। अध्यक्ष जौहर साहब थे और उन्हें भी अपना परिचय अध्यक्षीय भाषण के साथ देना ही था। उनका परिचय इस प्रकार था-

"मेरे माता-पिता ने मेरा नाम रखा था 'सिकन्दरलाल'। इसी नाम से मैंने पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से हाई स्कूल पास किया। करीब 17 साल की उम्र में मैं दिल्ली आया और आर्यकुमार सभा का सक्रिय कार्यकर्ता बन गया और शीघ्र ही उसका सचिव भी। 18 वर्ष की उम्र में तब मुझे यह नाम 'सिकन्दरलाल'

बहुत बुरा लगने लगा, इसलिये जानबूझ कर मैंने इसे बदल देना चाहा। इसके लिये आर्यकुमार सभा में एक छोटा सा जलसा किया और नया नाम 'सुरेन्द्रनाथ' कर लिया जिसका मेरे लिये अर्थ था 'Surrender not.' नये नाम के प्रति मैं सजग था और इस पर मुझे गर्व भी था। उन दिनों आर्यकुमार सभा और आर्य समाज के लोग प्राचीन परिपाटियों को पहले से ही बदलने में लगे थे।"

"अब हम ब्रिटिश हुकूमत के विरूद्ध सत्याग्रह और जेल भरो आन्दोलन के द्वारा संघर्ष करने में लग गये थे। मुझे बार-बार ऐसी प्रेरणा मिली थी कि हमें किसी के सामने समर्पण नहीं करना चाहिए। लेकिन विपत्ति और नियति का ऐसा मरणान्तक चक्कर चला कि पाण्डिचेरी आश्रम की उन माँ के सामने झुकने व समर्पण कर देने के लिये मैं बाध्य हो गया जो एक फ्रांसीसी महिला थीं।"

"मेरा जन्म गरीब माँ-बाप के यहाँ हुआ था पर मेरे पूर्वज और चचेरे-भाई इतने अमीर थे कि मैं वर्णन नहीं कर सकता। वे पंजाब के बड़े जमींदारों में से थे और राजा-महाराजा की तरह शान से रहते थे। साथ ही वे कट्टर सनातनी सिख थे। पंजाब के गवर्नर, वाइसराय और भारत के गवर्नर जनरल या कमिश्नर या डिप्टी कमिश्नर जैसे उच्च अंग्रेज अधिकारियों के साथ हाथ मिलाकर जब वे घर लौटते तो अपनी कीमती परम्परागत पोशाकों को जला देते और गंगाजल से स्नान करते। 60-65 वर्ष पूर्व मैंने स्वयं इन चीजों को देखा व अनुभव किया था। कट्टरता के उन दिनों में समुद्र पार के व्यक्तियों को अछूत म्लेच्छ माना जाता था। और मेरी विपत्ति का हाल तो देखिये कि उसी परिवार का होकर भी मैंने एक फ्रांसीसी महिला को अपना गुरू बनाया, उसके चरणों को चूमा और उन्हें धोकर चरणामृत के रूप में पान किया। यही नहीं उनके तमाम शिष्यों को जो समुद्रपार के अनेकों देशों- हालैण्ड, जर्मनी, इग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका, स्विज़र लैण्ड, अफ्रीका आदि से आये थे, देवी-देवता मानकर प्रेम से गले लगाया।"

"और इस सम्मेलन में अंतिम विपत्ति जो मुझ पर आज आ पड़ी है वह यह है कि तुम जैसे ग्रामीणों के सामने जो निपट असभ्य, अशिष्ट, लंठाधिराज, भोले हो व फटे पुराने गंदे चिथड़ों में लिपटे हो, अपना सिर झुका रहा हूँ क्योंकि आप अबोध, निर्मल हृदय, प्यार से भरे हुये, भले, मधुर व मिलनसार हो और आश्चर्य होता है कि उसी मिट्टी से बने हो जिससे हम से में अचानक मुझे यह अनुभूति होती है कि यद्यपि मनुष्य का यह चोला मिट्टी का बना है तथापि भगवान् इसी में निवास करते हैं-"

'यह खाक का पुतला है
लेकिन भगवान् इसी में रहते हैं।'

यह परिचय उनकी व्यंगात्मक शैली का ठेठ नमूना है जिसमें वे बड़ी रहस्यात्मक चीजों को चेतना के हर तबके के लोगों को हास-परिहास में समझा देते थे। वे संसारी जीवन के लिये थे ही नहीं, उसे तो उन्होंने श्रीमाँ के प्रथम दर्शन में ही चरणों में अर्पित कर सदा के लिये उससे मुक्त हो गये थे। तब से उनका कार्य क्षेत्र आंतरिक जगत में मानव जीवन के रूपान्तर के लिये प्रयास में परिवर्तित हो गया था। इसके लिये जिन बाहरी संरचनाओं की आवश्यकता थी उन्हें खड़ा करने में जुट गये। इस क्षेत्र में उनकी सृजनात्मकता अतुलनीय है। उन्होंने निर्माण कार्यों में सुबह से शाम तक, रात दिन एक करके जो ढांचा तैयार किया उसमें 'असुर की शक्ति व असुर का उद्यम' दिखता है। इन ढाँचों में त्याग व तपस्या का जो बीज बोया उसमें 'देवता का ज्ञान देवता का चरित्र' झलकता है। उनका साम्राज्य कटनी से कोलकत्ता तक और दिल्ली से नैनीताल तक

फैला था। इन लाखों करोड़ों के साम्राज्य का निर्माता सम्राट स्वयं को एक चौकीदार मानकर माँ के फाटक पर खड़ा चौकीदारी का काम करने लगा। तब स्वर्ग के देवता भी इस फ़क़ीर के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे।

अपनी फ़क़ीर की इस अमीरी के बल पर ही उन्होंने एक पत्र में मुझे लिखा, 'मैंने अपना काम पूरा कर लिया है और शायद उस काम से कहीं अधिक किया है जिसे जयप्रकाश ने अपने सम्पूर्ण जीवन में किया है। उनके (जयप्रकाश के) प्रारब्ध में यह सारा यश और सम्मान था... लेकिन इसके लिये मुझे जरा भी पश्चाताप नहीं है, क्योंकि मैं जो करता रहा हूँ, वह सीधे भगवान् का कार्य है और उनकी समग्र क्रांति से कहीं ऊँचे स्तर का है क्योंकि यह चेतना के समग्र रूपान्तर का काम है। यह कार्य कभी समाप्त होने वाला नहीं है जबकि सारे राजनीतिक, विचारधाराओं का आधार बहुत थोड़े समय के लिये ही होता है। ' (13/10/79)

उन्होंने अपने 'देवता के श्रम' के बारे में आगे चलकर लिखा, 'मुझे यहाँ आये ठीक एक महीना हुआ। मुझे जैसा भी ठीक जँचता है उसके अनुसार वननिवास के संवारने के काम में पूरी तरह जुटा हुआ हूँ यद्यपि इसे कोई नहीं पसंद करता।' (1/7/81) ये पत्र निश्चित ही उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा और दैवी श्रम के दुर्लभ दस्तावेज हैं।

अपने फ़क़ीर शब्द के सम्बोधन के बारे में उन्होंने बताया कि किस प्रकार घोर तपस्या के बाद उन्होंने 'फ़क़ीरी' अर्जित की। 'मेरा पूरा जीवन ही सत्याचरण, तपस्या और फ़क़ीरी का रहा है लेकिन जनवरी 1981 की पहली तारीख से अपने नाम के आगे मैंने 'फ़क़ीर' शब्द लगाना शुरू किया है। आज सुबह-सुबह किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा फ़क़ीरी को पुष्ट करते हुये मेरी चेतना में से इसे स्थापित कर दिया गया। शायद, अप्रत्यक्ष रूप में हिमालय में की गई मेरी 7 महीने की तपस्या का यह फल है। हो सकता है कि यह भी भगवान् की कोई लीला या कार्ययोजना हो। इस फ़क़ीरी की वर्षगांठ एक भण्डारे के रूप में 1/1/82 को मनाई जाएगी।

यह एक बहुत ही गोपनीय बात है इसलिये बहुत थोड़े से उन्हीं लोगों को मैं बता रहा हूँ जो मेरे नजदीकी और प्रिय हैं। कृपया इस बात को अपने तक ही सीमित रखियेगा।'

विचार और सूत्र

(श्रीमाताजी)

- अपने अज्ञान में हम बच्चों के समान इसी बात पर फूल उठते हैं कि हम बिना किसी सहायता के सीधे चल रहे हैं, अपने इस उत्साह में अपने कंधे पर माँ के स्थिर स्पर्श का भान ही नहीं होता। पर जब हम चेतते हैं तो पीछे मुड़कर क्या देखते हैं कि यह तो भगवान् ही हमें हर समय आगे चला रहे थे और सहारा दिये हुए थे।

- पहले जब कभी मैं पाप के गर्त में गिरता था, मैं रोने लगता था, अपने और भगवान् के प्रति रोष से भर उठता था। बाद में यह प्रश्न करने की हिम्मत कर बैठा, "तुमने फिर से मुझे कीचड़ में क्यों डाल दिया, सखे?" पर यह भी अपने मन को धृष्ठता एवं अशिष्टता ही प्रतीत हुई। तब मैं एक ही काम कर सका, चुपचाप उठकर कनखियों से उसकी ओर देखकर अपनी सफाई में लग गया। जब तक व्यक्ति को अपने गुणों का अभिमान रहता है सर्वोच्च प्रभु उसे पाप-गर्त में गिराते रहेंगे जिससे उसे विनम्रता की आवश्यकता अनुभव होने लगे।

- भगवान् का आनंद गुह्य एवं आश्चर्यजनक है; वह एक रहस्य है, हर्षोन्माद है, जिसका सामान्य बुद्धि उपहास करती है, किंतु एक बार जब आत्मा उसका स्वाद चख लेती है तो वह उसे कभी नहीं छोड़ सकती, चाहे उसे संसार में इसके लिये कितना भी अपमान, कष्ट एवं यंत्रणा क्यों ना सहनी पड़े। अभी तक तो संसार इस विशुद्ध, आलोकपूर्ण दिव्य आनंद का विरोध ही कर रहा प्रतीत होता है; किंतु एक दिन ऐसा आयेगा जब संसार भी इस दिव्य आनंद को अभिव्यक्त करेगा। इस कार्य के लिये उसे तैयार होना ही होगा।

- जगद्गुरु भगवान् तेरे मन से अधिक बुद्धि रखते हैं; उन पर भरोसा रख, इस स्वार्थमय, सदा के अभिमानी और संशयवादी मन पर नहीं। संशयवादी मन सदा ही शंका करता है, क्योंकि वह समझ नहीं सकता, किंतु भगवान् के प्रेमी का विश्वास सदा ही जानने की चेष्टा में रहता है, चाहे वह समझ ना भी सके। हमारे अज्ञान के लिये दोनों की आवश्यकता है, पर इनमें से कौन-सा अधिक शक्तिशाली है इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता। जिस वस्तु को मैं आज नहीं समझ सकता वह किसी-ना-किसी दिन समझ में आयेगी ही, पर यदि मैं विश्वास और प्रेम ही खो बैठा तो मैं उस लक्ष्य से जिसे भगवान् ने मेरे सामने रखा है एकदम ही च्युत हो जाऊँगा।

- मैं अपने पथप्रदर्शक और शिक्षक भगवान् से पूछ सकता हूँ, "क्या मैं ठीक रास्ते पर हूँ या आपने अपने प्रेम और बुद्धिमत्ता के कारण मेरे मन को मुझे धोखा देने की अनुमति दे दी है?" तुम यदि चाहो तो अपने मन पर शंका कर सकते हो, पर इस बात पर शंका मत करो कि भगवान् ही तुम्हारा पथप्रदर्शन कर रहे हैं।

- मैंने यह देख लिया है कि जब भी किसी वस्तु को भगवान् ने हमसे दूर रखा है, ऐसा उन्होंने प्रेम और बुद्धिमत्तावश ही किया है। यदि उस समय वह मुझे प्राप्त हो जाती तो मैं उस महान् शुभ को भयानक विष में परिवर्तित कर देता। तो भी जब कभी हम आग्रह करते हैं, वे हमें विष भी दे देते हैं, जिससे कि हम उससे मुँह फेर लेना सीख सकें और उनके अमृतसर का आस्वादन ज्ञानपूर्वक कर सकें। जब मनुष्य थोड़ा

और बुद्धिमान हो जायगा तो वह किसी भी विषय में शिकायत नहीं करेगा और भगवान् द्वारा दी गयी वस्तुओं को उनकी कृपा के रूप में स्वीकार करेगा, ऐसी कृपा के रूप में जो अत्यधिक अनुग्रहपूर्ण है। जितना अधिक हम उनके प्रति समर्पित होंगे उतना अधिक हम उन्हें समझ सकेंगे। जितना अधिक हम उनके प्रति कृतज्ञ होंगे उतने अधिक हम प्रसन्न भी रहेंगे।

- भगवान् ने बच्चे को प्यार करने के लिये उसे अपने आनंदी हृदय के पास बुला लिया, किंतु माँ रो उठी, उसे सांत्वना देना कठिन हो गया, क्योंकि उसका बच्चा अब नहीं रहा।

- जब मुझे कोई कष्ट या पीड़ा होती है, या मेरे साथ कोई दुर्घटना घटित होती है तो मैं कहता हूँ, "हाँ तो मित्र, तुमने फिर मुझे तंग करना शुरू कर दिया", और **मैं पीड़ा का, कष्ट का आनन्द उठाने तथा दुर्घटना के सौभाग्य का उपभोग करने बैठ जाता हूँ; तब वह देख लेता है कि मैं उसकी चालाकी समझ गया हूँ और वह अपने भूतों-प्रेतों को मुझसे दूर हटा लेता है।**

श्री अरविन्द कितनी सुन्दरता से हँसी-हँसी में हमें साधारण मानवी चेतना की असत्यता को समझाने का प्रयत्न करते हैं, साथ ही भागवत चेतना के उस आलोकपूर्ण एवं सर्वशक्तमान् आनंद की जिसे हमें प्राप्त करना है।- मेरे प्रेमी ने मेरा पापरूप वस्त्र छीन लिया और मैंने भी प्रसन्न भाव में उसका त्याग कर दिया; तब उसने मेरे पुण्यरूपी वस्त्र की ओर हाथ बढ़ाया, पर मैंने लज्जा और भय से अभिभूत होकर उसका प्रतिवाद किया।

किंतु जब उसने बलपूर्वक मुझसे वह ले ही लिया तो मैंने देखा कि किस प्रकार मेरी आत्मा अब तक मुझसे छुपी पड़ी थी। माताजी कहती हैं : जब हम अपने पुण्यरूपी वस्त्र का भी त्याग कर देंगे, तभी हम 'सत्य' के लिये तैयार होंगे।

- पाप कृष्ण की, पुण्यात्मा की दृष्टि से,अपने-आपको छिपाने के लिये, एक चाल है, स्वांग है। ओ 'फारिसी', पापी में भी भगवान् को देख, अपने हृदय को पवित्र कर और अपने भाई को हृदय से लगा ले।

सदा की भाँति यहाँ भी श्री अरविन्द अपने विशिष्ट विनोदपूर्ण ढंग से हमें बताते हैं कि भागवत सत्य पाप और पुण्य दोनों से ऊपर है।

मर्ज़ी

(सुरेन्द्रनाथ ज़ौहर फ़क़ीर)

स्वप्न नहीं था सच्ची बात है।

मैं एक कोने में बैठा हुआ था। मेरी तबियत कुछ अच्छी नहीं थी। चुपचाप बैठा था। यह प्रतीक्षालय (Waiting Hall) था। स्त्रियों और बच्चों से खचाखच भरा था। मैं चुपचाप बैठा था परन्तु मेरे प्रतीक्षालय में तो ख़ूब शोर मचा था। पुरुष बहुत थोड़े से बैठे थे और सब टिकट आदि ख़रीदने गये होंगे। कुछ अपने बाल-बच्चों के लिये खाने-पीने का सामान ख़रीदने गये होंगे।

थोड़ी देर में मैं भी उठा और बाहर चला गया, और एक दर्जन मौसमी ख़रीद लाया। यह सोचकर कि मेरे लिये एक-एक मौसम्मी छीलकर खाना ही अच्छा है और कुछ नहीं खाना चाहिये, सफ़र में तबियत कहीं ज़्यादा खराब ना हो जाये।

अभी वापस आकर बैठा ही था, मौसम्मी छीलनी शुरू नहीं की थी कि एक सज्जन आये और मुझे नमस्ते की। एक दो बातें हुईं, "कहिये आप कहाँ जा रहे हैं?" मेरा और बोलने को जी नहीं चाह रहा था। इसलिये मैंने उनसे यह नहीं कहा कि, "आइये बैठिये।" हालाँकि गाड़ी के आने में समय तो बहुत था और समय गुज़ारना भी था।

उन सज्जन के साथ दो बच्चे थे। मैंने टालने के लिये उनके हाथ में एक मौसम्मी दी और कहा कि छीलकर बच्चों को थोड़ी-थोड़ी दे दें। वह वहीं बैठ गये और छीलने लगे और बच्चों को देना शुरू किया।

यह देखकर इतनी देर में बच्चे और आ गये और उनके सामने खड़े हो गये। उन बच्चों को भी देना पड़ा। यह देखकर दो-चार और आ गये और वह मौसम्मी तो एक मिनट में ही खत्म हो गईं। दो-चार बच्चे खड़े ही रह गये। मैंने उनके हाथ में दूसरी मौसम्मी दी उन्होंने उसको भी छीलकर बाँटना शुरू किया।

यह देखकर कि सब बच्चों को मौसम्मी मिल रही है बच्चों का ताँता ही लग गया। हर दो के बाद दो और आते ही गये। अब मैं उनको कैसे रोकता? मैं एक के बाद दूसरी मौसम्मी देने लगा तो थोड़ी देर में बारह-की-बारह मौसम्मियाँ खत्म हो गईं और बच्चे तो अभी खड़े रह गये।

मैं भागकर गया और दो दर्जन मौसमी और ख़रीद लाया और ये मौसमी छिलती गईं और बँटती गईं।

मेरी बीमारी में मौसमी खाने की बात धरी की धरी रह गई। अब तो जब बच्चों का ताँता टूटे तब मैं फिर बाहर जाऊँ और अपने लिये मौसमी लाऊँ।

मेरे माथे पर कोई तिलक आदि तो लगा नहीं था और ना कोई मैंने साधु-सन्यासी के वस्त्र पहने हुये थे। ना मेरी दाढ़ी और बाल ही बहुत बड़े-बड़े थे। ना मालूम क्यों और कैसे यह करिश्मा हुआ कि बच्चों की क़तार अभी ख़त्म नहीं हुई थी कि स्त्रियों ने भी उठ-उठकर आना शुरू कर दिया कि शायद कोई बाबा प्रसाद बाँट रहे हैं। प्रसाद लेने की प्रथा तो भारतवर्ष में युग-युगों से चली आ रही है।

अब मैं बार-बार उठकर बाहर जाऊँ और वे सज्जन छीलते जायें और यह ताँता तो कभी ख़त्म ही ना हो। दुकानदार की मौसम्मियाँ भी ख़त्म होने को आ गईं। दुकानदार ने पूछा, "बाबा यह क्या लीला है? मौसम्मियाँ कहाँ डालते हो और फिर आ जाते हो?" जब दुकानदार के पास दो-चार मौसम्मियाँ ही बाकी

रह गईं – अब दर्जन तो थी नहीं कि मैं ख़रीदने को जाता। दुकानदार भी पीछे-पीछे प्रतीक्षालय में तमाशा देखने को आ गया और वह भी सामने आकर प्रसाद लेने को खड़ा हो गया। मैं कुछ थक गया था और मन में कुछ चिड़चिड़ाहट और गुस्सा भी आ रहा था।

मैंने भगवान् से कहा, "मेरी पहले ही तबियत खराब थी और तुमने यह क्या तमाशा बना रखा है? मेरे पैसे खत्म हो गये। अब मैं गाड़ी का टिकट कैसे लूँ?" भगवान् कहते हैं, "क्या मौसम्मियाँ तुमने बनाई थीं? पैसे तुम कहाँ से लाये थे? इस प्रतीक्षालय में क्यों आये? जाओ जाकर अपने स्थान पर बैठो।"

मैं हक्का-बक्का रह गया। मेरे से कुछ जवाब नहीं बना। देखा तो अपने स्थान पर वापस पहुँच गया हूँ।

यह सब उसकी मर्ज़ी थी।

धीरज

राजा ने संत के तीन वचन सुनेः मौत जैसी बात सामने आ जाये तो भी आवेश में नहीं आना, अतिथि का सत्कार करना, धीरज से हर बात सुननां

राजा पैदल जा रहा था, आकाशवाणी हुयी कि तेरी मौत सांप के काटने से होगी, उसने पहाड़ तक धूप दीप की सुगन्ध फैला दी, जगह जगह दूध के कटोरे रख दिये। शाम को सांप निकला, देखा जिसे मैं मारने जा रहा हूं, उसी ने मेरा इतना सत्कार किया है, उसे नहीं डसूंगा-सांप लौट गया। राजा की लड़की राजकुमार की पोशाक पहन कर रानी के साथ सो रही थी। राजा महल में आया, देखा रानी परपुरूष के साथ सो रही है। गुस्सा आया, तलवार निकाल ली। फिर संत का तीसरा वचन याद आया-सोचा रानी को उठा कर पूछ लूं। पता चला यह उसी की लड़की है जो नाटक में राजकुमार बनी थी। राजा खुश हो गया। बोला, संत की कितनी महिमा है, एक एक वचन से मौत टल गयी।

श्री अरविंद रैलिक्स स्थापना की 60वीं वर्षगांठ

रूपा गुप्ता

श्री अरविंद रैलिक्स स्थापना की 60वीं वर्षगांठ के उपलक्ष में श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा में 8 दिवसीय कार्यक्रम रखा गया जिसका शुभारम्भ 2 दिसम्बर, 2017 प्रातःकाल 6.30 को आश्रम के ध्यानकक्ष में डॉ0 सम्पदानन्द मिश्रा द्वारा मन्त्र योग से हुआ। मदर्स इंटरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा मंगलाचरण और श्री अरविंद रैलिक्स स्थल पर दीप प्रज्जवल, जयन्ती रामाचन्द्रन का स्वागत संबोधन और तत्पश्चात तारा दीदी ने 'सावित्री' से कुछ अंश पढ़े। 11बजे से 12.30 तक डॉ0 सम्पदानन्द मिश्रा ने ' A key to the Heart of India' और 3 से 4.30 तक अमीता मेहरा ने 'Key practices in the Yoga for the Future' पर वार्तायें प्रस्तुत कीं। संध्या 6 से 7.10 बजे तक पंडित बरून कुमार पॉल द्वारा संगीत प्रस्तुति और अन्त में तारा दीदी के सावित्री पाठ से पहले दिन का सत्र समाप्त हुआ।

3 दिसम्बर, 2017- प्रातःकाल 6.30 को आश्रम के योग कक्ष में देबी प्रसाद द्वारा हठ योग, मदर्स इन्टरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा मंगलाचरण। 9 से 10 बजे तक ध्यानकक्ष में संजय प्रकाश की वार्ता 'Integral Design, Engineering and Architecture', 10 से 10.45 तक श्री रमेश बिजलानी जी का ध्यान कक्ष में श्री अरविन्दोपनिषद पर सत्संग, 11.15 से 12.30 तक प्रशान्त खन्ना द्वारा 'Thee only Thee-' Meditations on the Gita, The Mother and Sri Aurobindo, और 3 से 4.30 तक अनुराधा ने 'Connecting the Dots....Pattern behind patterns....' और डॉ0 सम्पदानन्द मिश्रा ने 'The Importance and Relevance of India's Cultural Heritage' कार्यशाला प्रस्तुत की। 5.40 अमीता मेहरा ने 'Key practices in the Yoga for the Future' पर वार्तायें प्रस्तुत कीं। संध्या 6 से 7.10 बजे तक पंडित बरून कुमार पॉल द्वारा संगीत प्रस्तुति और अन्त में

7.10 तारा दीदी के सावित्री पाठ से दूसरे दिन का सत्र समाप्त हुआ।

4 दिसम्बर 2017- डॉ0 सम्पदानन्दा मिश्रा द्वारा मंत्र योग, 8.45 से 9.00 तक मदर इंटरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा मंगलाचरण, 9 से 10.30 तक ध्यान कक्ष में प्रशान्त खन्ना जी की वार्ता 'Thee, Only Thee – Meditations on the Gita, The

Mother and Sri Aurobindo' 11.00 से 12.30 तक डॉ आलोक पाण्डेय वार्ता 'Integral Health' व 3 से 4.30 तक हीरा द्वारा खेल के मैदान में Outdoors with Nature: Games and Relaxation कराया गया। 5.30 से 7.00 तक हॉल ऑफ ग्रेस में मदर इंटरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा Play: A Life Divine प्रस्तुत किया गया। 7.00 से 7.30 ध्यान कक्ष में The Mother's / New Year Music के साथ ध्यान किया गया।

5 दिसम्बर 2017- प्रातःकाल आश्रम के योग कक्ष में देबी प्रसाद द्वारा हठ योग, 9 से 10.30 समाधि पर मदर इंटरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा Offering of Music and Flowers , 11 से 12.30 तक ध्यान कक्ष में प्रो0 मनोज दास द्वारा 'Signals for the Next Renaissance' पर वार्ता प्रस्तुत की गयी। 1.30 से 4.30 Hall of Yoga & Hall of Joy में मृणमयि मजूमदार and Matthieu Charbonneau द्वारा 'Expressive Art: Towards a New Creation' कार्यशाला प्रस्तुत की गयीं। 6.00 से 6.30 समाधि पर दीप दान और ध्यान कक्ष में Offering : Homage to Sri Aurobindo By Ashram Choir

6 दिसम्बर 2017- प्रातः 6.30 से 7.30 डॉ0 सम्पदानन्द मिश्रा द्वारा मंत्र योग, 8.45 से 9 ध्यान कक्ष में मदर इंटरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा मंगलाचरण, आनन्द रेड्डी द्वारा 'The Land of Sri Aurobindo' पर वार्ता, 11 से 12.30 हॉल ऑफ योगा में 'Integral Health' पर डॉ0 आलोक पाण्डेय, डॉ0 रमेश बिजलानी तथा डॉ0 तरूण बवेजा द्वारा वार्ता। 3 से 4.30 जयन्ती द्वारा 'The Awareness of The Body' पर कार्यशाला प्रस्तुत की गयी। 6.10 से 7.10 बजे तक पवित्रा चैरी और अनिन्दो बोस द्वारा संगीत प्रस्तुति और अन्त में 7.10 से 7.30 तारा दीदी द्वारा सावित्री पाठ।

7 दिसम्बर 2017- प्रातःकाल 6.30 योग कक्ष में हठ योग, 8.45 से 9.00 तक ध्यान कक्ष में मदर इंटरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा मंगलाचरण, 9 से 10.30 आनन्द रेड्डी द्वारा 'The Significance of Relics' पर वार्ता प्रस्तुत की गयी। हीरा द्वारा खेल के मैदान में Outdoors with Nature: Games and Relaxation-

3 से 4.30 सम्पदानन्दा मिश्र द्वारा 'The Importance and Relevance of India's Cultural Heritage', तथा हॉल ऑफ योगा में Neeltji Huppes द्वारा 'Self-Observation and Reflection in Integral Psychology' पर कार्यशाला प्रस्तुत की गयीं। 5.10 से 6.40 हॉल ऑफ ग्रेस में मित्ती देसाई द्वारा Dance–Lecture-Demonstration: The Centre from which it all Spins प्रस्तुत किया गया। 7 से 7.30 ध्यान कक्ष में Musical Offering by Ashram Choir व तारा दीदी का पाठ।

8 दिसम्बर 2017- डॉ0 सम्पदानन्दा मिश्रा द्वारा ध्यान कक्ष में मंत्र योग, मंगलाचरण, डॉ0 विजया रामास्वामी द्वारा ध्यान कक्ष में 'Crafting Beauty, Crafting Gods, Craft Renaissance in

India' पर वार्ता, । 11 से 12.30 ध्यान कक्ष में प्रो0 दीप्ती मैहरोत्रा, डॉ0 बिजलानी, डॉ0 संजय प्रकाश, सुपर्ना तथा प्रो0 पूनम बत्रा द्वारा Education forum: 'Art, Design, Engineering and Education' पर वार्तायें प्रस्तुत की गयीं। 5.30 से 7.00 ध्यान कक्ष में प्रो0 मनोज दास जी द्वारा 'The Rishi' पर वार्ता प्रस्तुत की गयी। 7 से 7.30 आश्रम Choir द्वारा संगीत प्रस्तुति अन्त में तारा दीदी द्वारा सावित्री पाठ।

9 दिसम्बर 2017- प्रातःकाल 6.30 देबी प्रसाद द्वारा हठ योग। 10 से 10.30 ध्यान कक्ष में मदर इंटरनेशनल स्कूल के परिवार द्वारा Offering: Orchestra. 11 से 12.30 हॉल ऑफ योगा में Neeltje Huppes द्वारा 'The Quest for Constant Remembrance' तथा समाधि लॉन में जयन्ती द्वारा 'The Awareness of The Body' कार्यशाला प्रस्तुत की गयीं। 3 से 4.30 ध्यान कक्ष में जयन्ती द्वारा Reflection, 6 से 7.10 सम्पदानन्द मिश्रा द्वारा मंत्र गान प्रस्तुत किया गया। अन्त में 7.10 से 7.30 तारा दीदी के सावित्री पाठ से दिन का सत्र समाप्त हुआ।

16, 17 दिसम्बर, 2017- सम्पूर्ण योगा कार्यक्रम

डॉ0 रमेश बिजलानी और श्री देबी प्रसाद द्वारा आयोजित किया गया जिसमें प्रातः 8 बजे आसन, प्रणायाम, तत्पश्चात हवन, संगीत और डॉ0 बिजलानी द्वारा 'Who am I', 'The purpose of Life', 'Stress Management' or 'The journey of life' जैसे विषयों पर अत्यंत स्पष्टता से प्रकाश डाला गया। सभी भागीदारों ने इस कार्यक्रम लाभ उठाया। कार्यक्रम अत्यंत सराहनीय रहा।

प्रेरणायें

(हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता)

प्रिय तारा दीदी,

श्रीमाँ की कृपा अत्यन्त आश्चर्यजनक रूपों में कार्य करती हैं। अत्यन्त साधारण क्रियाकलापों में से भी हमें बहुत सुन्दर अर्थ प्राप्त होते हैं। हम सब को अपने प्यार आशा और अभीप्सा में समाने के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद। हम सब आश्रम परिवार के अपनेपन और उनके हमारी सहायता करने और उत्साहित करने के सामूहिक प्रयास से स्वयं को अत्यंत विनीत और प्रेरित पाते हैं। आशा करते हैं आप सब से दोबारा जल्दी मिल सकें।

आपके सुझाव और आपके मार्गदर्शन के लिये अत्यन्त आभार और प्रेम के साथ-

संगत, श्रेया और सर्ग

* *

प्रिय तारा दीदी,

श्री अरविन्द के रैलिक्स स्थापना की 60वीं वर्षगाँठ के अवसर पर मेरे थोड़े से कार्य के लिये भी आपकी सराहना ने मुझे गहराई तक अभिभूत कर दिया। जैसा कि हम सब जानते हैं कि समस्त कार्यक्रम का इतने सरल व सुचारू रूप से आयोजन श्रीमाँ की कृपा की अभिव्यक्ति ही थी।

मैं दिल्ली आश्रम और व्यक्तिगत रूप से आपका अत्यंत ऋणी हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सदा आपके प्रति आभारी रहूँ।

अत्यंत आदर सहित,

मनोज दा

* *

प्रिय तारा दीदी,

मैं पांडिचेरी आश्रम के स्कूल का विद्यार्थी उत्सर्ग हूँ। मैंने श्री अरविन्द रैलिक्स स्थापना की 60वीं वर्षगाँठ के सभी सत्रों का खूब आनन्द लिया। मैं अधिकतम गतिविधियों को अपने स्कूल के बच्चों के साथ भी बाँटना चाहूँगा।

हमारा आवास बहुत आरामदायक था और हमें किसी तरह की कोई समस्या नहीं हुई। भोजन बहुत स्वादिष्ट था। दिल्ली आश्रम का कैम्पस बहुत ही सुन्दर है। इन दस दिनों में मुझे अनेक लोगों से मिलने, उनसे बातचीत करने और बहुत कुछ सीखने को मिला। मैं अवश्य ही दिल्ली आऊँगा और मीराम्बिका में पढ़ाऊँगा। मैं ट्रैकिंग के लिये नैनीताल और रामगढ़ भी जाना चाहूँगा। आध्यात्मिक यात्रा में एकनिष्ठ बहुत से साधकों से मिलने और उनसे कुछ सीखने का अवसर प्रदान करने के लिये मैं आपका आभारी हूँ। आश्रम के स्वयंसेवी बहुत उत्साहित करने वाले और सहायता करने वाले थे। सभी कुछ के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद।

उत्सर्ग

* *

माँ

मुझे दिल्ली आना बहुत अच्छा लगा, और आप जिस तरह से कार्य करती हैं वो आश्चर्यचकित करने वाला है। हमारा दिल्ली आना मौसम के अनुसार भी बहुत सुविधाजनक था। आपने जो हमारी प्रेम से देखभाल की उसका धन्यवाद करता हूँ। श्रीमाँ की कृपा

से हम जीवन के प्रत्येक क्षण के लिये आभार व्यक्त करना सीखें। आप मेरे जीवन के विशिष्ट व्यक्तियों में से एक हैं और अभी भी मुझे प्रेरित करती ही रहती हैं।

उत्तमा

✻ ✻

हमारे "Home for the Vulnerable Destitute" के लिये यह सौभाग्य की बात है कि हम आपकी विश्वव्यापी सम्मानित संस्था के साथ जुड़ पाये। हम आपके विभिन्न अनुदानों जैसे कम्बल, वस्त्र, रूम हीटर व अन्य घरेलु सामान, भोजन सामग्री, बच्चों के लिये खेल का सामान आदि के रूप में दी गयी सहायता के लिये बहुत आभारी हैं। आपकी संस्था द्वारा दी गई सामग्री सभी बेसहारा और बहुत छोटे बच्चों के लिये अनेक प्रकार से अत्यंत उपयोगी होती हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपके द्वारा दी हुई सहायता समाज के वास्तविक लाभार्थियों जैसे बेसहारा, बीमार और अकेले व्यक्तियों तक पहुँचती है। हम प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर की कृपा से आपकी संस्था और उन्नति करे, पनपे जिससे हम समाज के बेसहारा और संवेदनशील लोगों तक और सहायता पहुँचा सकें। अंत में मैं आपको इस होम के दो बच्चों को कुकिंग और फूड प्रोसेसिंग कोर्स "Cooking and Food Processing Course" में प्रवेश देने के लिये विशेष रूप से धन्यवाद करता हूँ। इससे वे दोनों बच्चे अपना उपयुक्त व्यवसाय चुनने और भविष्य में सतत उपयोगी जीवन जीने के लिये समर्थ होंगे।

मैं आपके लिये प्रार्थना करता हूँ व भविष्य में और सहयोग की आशा करता हूँ।

फादर रविन्द्ररंजन सी0 एम0
Compassionate Missionaries
Home for the Vulnerable Destitute